रसकपूर

(ऐतिहासिक उपन्यास)

ध्यान माखीजा

उमेश प्रकाशन
5, नाथ मार्केट, नई सड़क, दिल्ली 6

⊙ प्रकाशक
उमेश प्रकाशन,
5-बी, नाथ मार्केट, नई सडक, दिल्ली-110006

⊙ मुद्रक :
प्रिंट आर्ट,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

⊙ सस्करण
प्रथम, (जुलाई, 1978)

⊙ मूल्य
आठ रुपये

RASKAPOOR (A Historical Fiction)
by Dhyan Makhija
Rs. 8 00

ऐतिहासिक सच्चाई

उस दिन मैं आमेर स्थित सिलादेवी मन्दिर के पुजारी की बातें सुनकर विस्मय मे आ गया था। सितार के तारो को छेडते समय अचानक उन्होने मुझसे कहा था—'जानते हो, आमेर की इन पहाडियो का भी अपना एक इतिहास है। न जाने कितने रहस्य ये अपने गर्भ मे छुपाए बैठी हैं!'

पुजारी की बात चौका देने वाली थी।

फिर तो मैं पहाडियो मे छिपे हुए रहस्यो की जानकारी प्राप्त करने के प्रयत्न मे पूरी तन्मयता के साथ जुट गया। और तब मुझे यह जानकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि इन्ही पहाडियो मे एक 'अतृप्त आत्मा' अब भी अपने प्रियतम को ढूंढती हुई भटक रही है।

शायद इसे मेरी कोरी कल्पना या मात्र भ्रम ही कहा जायेगा परन्तु यह शाश्वत सत्य है कि 'आत्मा' का अस्तित्व है। इसके अस्तित्व को चूकि गीता या शास्त्रो मे भी स्वीकारा गया है, इसलिए नकारा नही जा सकता, ऐसी बात नही है। आज भी 'आत्मा' के अस्तित्व का वर्णन यदा-कदा पढने-सुनने को हमे मिलता है।

सर ओलिवर लॉज और सर विलियम कुकुस ब्रिटेन के माने हुए वैज्ञानिक हो चुके हैं। 'ईथर' तत्त्व का पदार्थ के साथ क्या सम्बन्ध है, इस विषय पर सर लॉज का अन्वेषण आज भी प्रामाणिक माना जाता है। सर लॉज और सर कुकुस दोनो ही वैज्ञानिको ने 'आत्मा' के अस्तित्व और मरणोत्तर जीवन की यथार्थता को पूरी तरह से स्वीकार किया है। सर लॉज का पुत्र रेमण्ड प्रथम विश्व युद्ध मे मारा गया था, परन्तु मरने के बाद भी पुत्र की 'आत्मा' का अपने पिता से निरन्तर सम्पर्क बना रहा और उस आत्मा ने अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाए अपने पिता को दी। इन्ही सूचनाओ के आधार पर सर लॉज को अपने अन्वेषण-कार्यो मे काफी

सहायता मिली।

इग्लैड के प्रमुख पत्र 'ईवनिंग पोस्ट' के सम्पादक विलियम कुलेन ऑमिर तथा प्रख्यात उपन्यासकार विलियम थैकरे जैसे विद्वानो ने भी 'आत्मा' के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए अनेक सस्मरण लिखे हैं।

वम्बई से प्रकाशित साप्ताहिक पत्र 'धर्मयुग' मे भी 'आत्मा' की यथार्थता को स्वीकारते हुए एक लेखमाला प्रकाशित हो चुकी है। 'उत्तरा वनाम शारदा' नामक इस लेखमाला मे वताया गया था कि नागपुर मे रहने वाली उत्तरा के शरीर मे कभी-कभी कोई दूसरी 'आत्मा' प्रविष्ट हो जाती थी, और उस समय वह युवती १५० वर्ष पूर्व की एक वगाली लडकी शारदा के रूप मे परिवर्तित हो जाती थी। तव वह विशुद्ध वगाली भाषा वोलने लगती थी। थोडी देर वाद अपनी पूर्वावस्था मे आ जाने पर वह सव कुछ भूल जाती थी और पुन उत्तरा वन जाती थी।

प्रस्तुत उपन्यास मे भी 'रसकपूर' की 'आत्मा' की ही कहानी है—वह आत्मा जो अपने प्रेमी महाराजा को आज भी आमेर के खण्डहरो मे ढूढ रही है।

इस उपन्यास मे जयपुर के खजाने का भी उल्लेख आया है। इतिहास साक्षी है कि शहशाह अकवर का सेनापति और उसकी राजस्थानी पत्नी का भाई महाराजा मानसिह अद्‌भुत पराक्रमी योद्धा एव महत्त्वाकाक्षी व्यक्ति था। उसने मुगल साम्राज्य के विस्तार के लिये आसाम, वगाल तथा अफगानिस्तान मे अनेक युद्ध लडे थे और विजित रहा था। इन युद्धो मे उसे लूट तथा मुआवजे के रूप मे अपार सम्पदा हाथ लगी थी। एक किवदति के अनुसार तो महाराजा मानसिह कावुल से अशर्फियो, स्वर्ण मुद्राओ और हीरे-जवाहरात का एक विशाल जखीरा ऊटो के काफिले पर लादकर जयपुर लाया था। उसके वाद भी मानसिह से लेकर सवाई जयसिह तक की पीढियो ने निरन्तर इस खजाने मे वृद्धि की। और फिर एकाएक खजाने का यह विशाल भण्डार न जाने कहा लुप्त हो गया। विश्वस्त सूत्रो के आधार पर ऐसा लगता है, यह खजाना कही जमीदोज

कर दिया गया था।

खजाने की खोज के लिये कई व्यक्तियो ने जी-तोड कोशिशें की परन्तु उन्हे सफलता नही मिली। यहा तक कि इमर्जेंसी के दौरान तत्कालीन केन्द्रीय सरकार ने भी लाखो रुपये व्यय करके इस खजाने को ढूढ निकालने की व्यापक खोज करवायी, परन्तु उसे भी निराश होना पडा।

इस उपन्यास का नायक महाराजा जगतसिंह १८०३ ई० मे जयपुर की राजगद्दी पर बैठा था और मात्र बत्तीस वर्ष की अवस्था मे ही स्वर्ग सिधार गया था। अपने अल्प जीवन-काल मे उसे अनेक युद्ध लडने पडे थे।

युवा राजा कलाप्रेमी तो था ही, एक परम सुन्दरी नर्तकी के प्रेमपाश मे वह बुरी तरह से जकड गया। रसकपूर नामक यह सुन्दरी नृत्य मे पारगत होने के साथ-साथ एक अच्छी गायिका भी थी। महाराजा जगतसिंह ने रसकपूर को रानी के रूप मे स्थापित करने की भरपूर चेष्टा की, उसके नाम का सिक्का भी चलाया, परन्तु अपने सामन्तो के घोर विरोध के कारण उसे मुह की खानी पडी।

रसकपूर कौन थी, जयपुर मे कैसे और कहा से आई थी, इसका इतिहास नही मिलता। नाहरगढ किले की कैद मे से भागकर वह कहा चली गई थी, इसका भी इतिहास मे उल्लेख नही है। राजस्थान-इतिहास के विशेषज्ञ कर्नल टॉड और डा० शर्मा केवल इतना ही लिखते हैं कि वह अद्भुत सुन्दरी, नृत्यप्रवीणा और कोकिल-कण्ठा थी और महाराजा जगतसिंह उस पर दिलोजान से न्यौछावर था।

मुझे इस वात का सन्तोप है कि मैंने इतिहास की सच्चाई को ईमानदारी से कायम रखते हुए इस उपन्यास की रचना की है।

राजस्थान विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अवकाश प्राप्त अध्यक्ष डा० माथुर लाल शर्मा का मैं हृदय से आभारी हू, जिन्होने इतिहास के सही तथ्यो की जानकारी कराकर मुझे पूरा सहयोग दिया।

जयपुर —ध्यान माखीजा

१-१-८८

रसकपूर

जयपुर नगर देश के अन्य नगरो की तरह टेढी-मेढी, घुमावदार भटका देने वाली गलियो वाला शहर नही है। और न ही इस शहर मे ठूठनुमा गिरते-पडते बेढगे मकानो की बेतरतीब कतारे है। ज्यामितिक कौशल द्वारा निर्मित इस शहर मे ऊची-ऊची गगनचुम्बी इमारतें भी नही है। यहा एक-दूसरे को समकोणो पर काटते हुए सीधे रास्तो के दोनो ओर एक विशिष्ट स्थापत्य शिल्प से चौकोर डिब्बेनुमा इमारते बनी हुई हैं। इस गुलाबी शहर को नाहरगढ किले की पहाडी से देखने से ऐसा लगता है, जैसे पहाड की तलहटी मे किसी नये बनाये जाने वाले शहर का एक सुन्दर 'माडल' रखा हुआ है।

मैं, विश्व की एकमात्र इस गुलाबी नगरी को नाहरगढ किले की प्राचीर से ठगा-सा देख रहा था। समूचा शहर गुलाबी चुनरी मे सजी-सजायी दुल्हन की तरह लग रहा था। शहर के चारो तरफ ऊचा परकोटा था। परकोटे के बाहर नगर-न्यास द्वारा निर्मित नयी बस्तियाँ सखियो की तरह दुलहिन को चारो ओर से घेरे हुए खडी थी।

दिन का अभी पहला पहर समाप्त हुआ था। छोटी-छोटी झरोखेनुमा खिडकियो के लाल-पीले-हरे काच सूर्य की श्वेत किरणो को विभिन्न रगो मे रगकर गुलाबी दीवारो पर बिखेर रहे थे। छतो पर अपने गीले बालो को सुखा रही तरुणियो के पायलो की छम छम आवाज, चमकारे मार रहे नाक के हीरे, नीचे फेरी लगानेवालो को जोर-जोर से आवाज लगाने के लिए प्रेरित कर रहे थे। आवाज सुनकर कोई तरुणी मुडेर पर हाथ

कोई उडता हुआ कपडा छू गया। ऐसा महसूस हुआ जैसे किसी तरुणी की साडी का आचल मेरे बालो को बिखेरता हुआ चला गया था। ऊचे दर्जे की भीनी-भीनी खुशबू भी मेरी नासिका से टकराई। मैंने आगे-पीछे, दायें-बायें सब तरफ देख डाला, पर कही कोई व्यक्ति नजर नही आया। फिर बार-बार यह किसका आचल मुझे छू जाता है? अचानक मैं भयभीत हो उठा, डर के मारे मेरी कपकपी छूटने लगी। मै एक ही छलाग मे दीवार से नीचे आ गया और सरपट नीचे की ओर भागा। पीछे मुडकर देखने की मेरी हिम्मत नही हुई। नीचे आबादी मे पहुचकर ही मैंने छुटकारे की सास ली।

मेरी मन स्थिति घर लौटने की नही थी। मै अपने को सहज करने और इस रहस्य को किसी के सामने उद्घाटित करने के उद्देश्य से अपने एक अतरग मित्र पकज के घर पहुचा।

मेरी बात सुनकर बजाय चौकने के मेरा मित्र हस पडा। "तुम भी कमाल के वहमी हो यार! भला ऐसा भी कभी हुआ है? कोई दिखाई दे नही और उसके कपडे छू जाए!"

"पकज! मेरी बात पर विश्वास करो। एक बार नही, दो बार किसी अदृश्य युवती की साडी का आचल मुझे छू गया था। साथ मे भीनी-भीनी सेंट की खूशबू भी आई थी।"

पकज और जोर से हस पडा, "अभी तक तो केवल पढा ही था कि कुछ लोग दिवास्वप्न देखने के आदी होते हैं, परन्तु आज इसे साक्षात् देख रहा हू। किसी रमणी की साडी का आचल छू गया था भीनी-भीनी खुशबू आई थी! भाई वाह! कमाल का स्वप्न है! मजा आ गया!"

"तुम मजाक समझ रहे हो और यहा मेरी हालत खराब हो रही है। पकज, मैं सच कह रहा हू, नाहरगढ किले मे आज किसी के आचल ने मुझे दो बार छुआ है!"

पकज ने चेहरे पर कृत्रिम गम्भीरता लाते हुए कहा, "मजाक नही समझ रहा हू, सही कह रहा हू। अवश्य ही तुम्हें वहम हो गया है। पुराने किलो-

टेककर नीचे भाकती और अपनी गोरी कलाई हिलाकर फेरीवाले को रुक जाने का इशारा कर देती। जब तक फेरीवाला दहलीज पर अपना असबाव टिकाता, छम छम करती हुई तरुणी अपनी ननदो-जेठानियो के साथ पट-पट सीढिया उतरती हुई नीचे पहुच जाती।

मैं इस सुदर नगरी के सौन्दर्य को निहारने मे खोया हुआ था कि अचानक एक उडते हुए कपडे की छुअन पाकर मैं चौक उठा। हवा के एक झोके के साथ एक उडता हुआ कपडा मेरी पीठ को छू गया था। मैंने मुडकर देखा, पर वहा मुझे कोई दिखाई नही दिया। मुझे वडा आश्चर्य हुआ। मै जिस दीवार पर खडा था, उसकी चौडाई भी इतनी नही थी कि कोई अन्य वहा से गुजर पाता। मैने नीचे झाककर देखा, किन्तु वहा भी कोई कपडा दिखाई नही दिया। मुझे वहुत अजीव लगा, पर फिर मैं इसे भ्रम समझकर पुन आखो के नीचे विछे जयपुर शहर को देखने लगा।

बहुत सोच-विचारकर योजनापूर्वक वसाया गया था जयपुर! तीन वडे आयताकार क्षेत्रो मे सीधी गलिया छोडकर, एक-दूसरे को देखते हुए चतुर्भुजाकार डिब्बो सरीखे मकान वनाये गये थे। हर मोहल्ले मे ऊची गुम्वजो वाले मदिर वने हुए थे, जिन पर विभिन्न पताकाए फहरा रही थी। सीढी ड्योढी वाजार मे वने हवामहल के पीछे 'चन्द्रमहल' किसी अलसा रही रमणी की तरह लग रहा था। उस पर फहरा रहा सामती ध्वज माथे पर लगी विदिया की तरह झिलमिला रहा था। मकानो के वरामदो एव मुडेरो के कगूरे हार की लडी की तरह शहर को पिरोये हुए थे। गलिया इतनी सीधी कि एक छोर पर खडे हो जाओ तो शहर का दूसरा छोर दिखाई दे जाए। सारे शहर का नक्शा कुछ ऐसा लग रहा था, जैसे किसी सिद्धहस्त हलवाई ने थाल मे सीधे चीरे लगाकर बर्फिया काटी हो।

दूर मोती डूगरी, जिसे तख्तेशाही भी कहा जाता है, दिखाई दे रहा था। उसके दायी ओर रामवाग महल था।

सन्-सन् करती हुई हवा का एक झोका आया और मेरी पीठ को फिर

टेककर नीचे झाकती और अपनी गोरी कलाई हिलाकर फेरीवाले को रुक जाने का इशारा कर देती। जव तक फेरीवाला दहलीज पर अपना अस-वाव टिकाता, छम छम करती हुई तरुणी अपनी ननदो-जेठानियो के साथ पट-पट सीढिया उतरती हुई नीचे पहुच जाती।

मैं इस सुदर नगरी के सौन्दर्य को निहारने मे खोया हुआ था कि अचा-नक एक उडते हुए कपडे की छुअन पाकर मैं चौक उठा। हवा के एक झोके के साथ एक उडता हुआ कपडा मेरी पीठ को छू गया था। मैंने मुडकर देखा, पर वहा मुझे कोई दिखाई नही दिया। मुझे वडा आश्चर्य हुआ। मैं जिस दीवार पर खडा था, उसकी चौडाई भी इतनी नही थी कि कोई अन्य वहा से गुजर पाता। मैंने नीचे झाककर देखा, किन्तु वहा भी कोई कपडा दिखाई नही दिया। मुझे वहुत अजीव लगा, पर फिर मैं इसे भ्रम समझ-कर पुन आखो के नीचे विछे जयपुर शहर को देखने लगा।

वहुत सोच-विचारकर योजनापूर्वक वसाया गया था जयपुर। तीन वडे आयताकार क्षेत्रो मे सीधी गलिया छोडकर, एक-दूसरे को देखते हुए चतुर्भुजाकार डिव्वो सरीखे मकान वनाये गये थे। हर मोहल्ले मे ऊची गुम्वजो वाले मदिर वने हुए थे, जिन पर विभिन्न पताकाए फहरा रही थी। सीढी ड्योढी वाजार मे वने हवामहल के पीछे 'चन्द्रमहल' किसी अलमाई रमणी की तरह लग रहा था। उस पर फहरा रहा सामती ध्वज माथे पर लगी विंदिया की तरह झिलमिला रहा था। मकानो के वरामदो एव मुडेरो के कगूरे हार की लडी की तरह शहर को पिरोये हुए थे। गलिया इतनी सीधी कि एक छोर पर खडे हो जाओ तो शहर का दूसरा छोर दिखाई दे जाए। सारे शहर का नक्शा कुछ ऐसा लग रहा था, जैसे किसी सिद्धहस्त हलवाई ने थाल मे सीधे चीरे लगाकर वर्फिया काटी हो।

दूर मोती डूगरी, जिसे तख्तेशाही भी कहा जाता है, दिखाई दे रहा था। उसके दायी ओर रामवाग महल था।

सन्-सन् करती हुई हवा का एक झोका आया और मेरी पीठ को फिर

कोई उडता हुआ कपडा छू गया। ऐसा महसूस हुआ जैसे किसी तरुणी की साडी का आचल मेरे बालो को बिखेरता हुआ चला गया था। ऊचे दर्जे की भीनी-भीनी खुशबू भी मेरी नासिका से टकराई। मैंने आगे-पीछे, दाये-बाये सब तरफ देख डाला, पर कही कोई व्यक्ति नजर नही आया। फिर बार-बार यह किसका आचल मुझे छू जाता है? अचानक मैं भयभीत हो उठा, डर के मारे मेरी कपकपी छूटने लगी। मैं एक ही छलाग मे दीवार से नीचे आ गया और सरपट नीचे की ओर भागा। पीछे मुडकर देखने की मेरी हिम्मत नही हुई। नीचे आबादी मे पहुचकर ही मैंने छुटकारे की सास ली।

मेरी मन स्थिति घर लौटने की नही थी। मैं अपने को सहज करने और इस रहस्य को किसी के सामने उद्घाटित करने के उद्देश्य से अपने एक अतरग मित्र पकज के घर पहुचा।

मेरी बात सुनकर बजाय चौकने के मेरा मित्र हस पडा। "तुम भी कमाल के वहमी हो यार! भला ऐसा भी कभी हुआ है? कोई दिखाई दे नही और उसके कपडे छू जाए!"

"पकज! मेरी बात पर विश्वास करो। एक बार नही, दो बार किसी अदृश्य युवती की साडी का आचल मुझे छू गया था। साथ मे भीनी-भीनी सेंट की खूशबू भी आई थी।"

पकज और जोर से हस पडा, "अभी तक तो केवल पढा ही था कि कुछ लोग दिवास्वप्न देखने के आदी होते हैं, परन्तु आज इसे साक्षात् देख रहा हू। किसी रमणी की साडी का आचल छू गया था भीनी-भीनी खुशबू आई थी! भाई वाह! कमाल का स्वप्न है! मजा आ गया!"

"तुम मजाक समझ रहे हो और यहा मेरी हालत खराब हो रही है। पकज, मैं सच कह रहा हू, नाहरगढ किले मे आज किसी के आचल ने मुझे दो बार छुआ है!"

पकज ने चेहरे पर कृत्रिम गम्भीरता लाते हुए कहा, "मजाक नही समझ रहा हू, सही कह रहा हू। अवश्य ही तुम्हे वहम हो गया है। पुराने किलो-

महलो मे अक्सर प्रेतात्माए भटकती रहती है, ऐसी एक भ्रामक धारणा वन गयी है। तुम भी इस धारणा के शिकार हो गये हो। कोई आचल-वाचल नही होगा दोस्त, तुम्हे अवश्य भ्रम हुआ है।"

मैं अपने मित्र को किसी भी प्रकार यकीन नही दिला सका कि आचल की छुअन का मेरा वह अनुभव वास्तविक था। मैंने उससे आगे तर्क करना उचित नही समझा और चुप हो गया।

मेरी मनोदशा का गलत आकलन कर मेरा मित्र मुझे मनोविज्ञान का भाषण देता हुआ टहलाने ले गया।

हम घूमते हुए वडी चौपड के पास अवस्थित रामचन्द्रजी के मदिर मे पहुचे।

मुख्य द्वार मे प्रवेश करते ही हमे वायी ओर के अहाते की तरफ से एक अजीव तरह के शोरगुल की आवाज सुनायी दी। भगवान को दूर से ही नमन करके हम दोनो भी उस शोर की ओर वढ गये।

भीड को चीरकर जव हम अदर पहुचे, वडा ही विचित्र दृश्य दिखाई दिया। सामने जो कुछ हो रहा था, उसे देखकर मेरा मित्र तो दग रह गया।

एक युवक फर्श पर पालथी लगाकर वैठा हुआ जोर-जोर से अपना सिर हिला रहा था। वह मुह से भी कुछ अस्पष्ट-सा वडवडा रहा था। युवक को चारो ओर से घेरे खडे लोग कह रहे थे—"देवी आई है देवी आई है!"

युवक का सिर हिलाना जोर पकडता जा रहा था। अव वह अपने हाथ-पाव भी फटकारने लग गया था।

"आ गये! आ गये! पडितजी आ गये!" भीड मे से कोई वोल उठा।

देवी को उतारने के लिए किसी ओझा को वुलाया गया था।

पडितजी ने आते ही अपनी कार्रवाई शुरु कर दी। उन्होने मन्त्र वोलते हुए युवक को स्थिर करने का प्रयास किया, परन्तु युवक का हाथ-पाव फटकारना कम नही हुआ।

"देवी नही है, यह तो कोई प्रेतात्मा है!" कहकर पडितजी ने प्रेतात्मा को भगाने के लिए आवश्यक सामग्री मगवायी। सामग्री मे एक नारियल भी शामिल था। पडितजी पुन दूसरे प्रकार के मत्र पढने लगे। एकाएक मत्र बोलना रोककर पडितजी जोर-जोर से बोलने लगे, "बोल! बोल, तू क्या चाहती है? जल्दी बोल !"

मत्रो का असर हुआ, झूम रहे युवक ने एक जोर का फटकारा मारा और नारी-स्वर मे बोला, "इत्र दे राजन्, इत्र दे! मुझे इत्र दे दे राजन् !"

पडितजी रुक गये और जो व्यक्ति उन्हे बुलाकर लाया था, उससे पूछा, "क्या इसके पास इत्र है?"

युवक के साथी ने बताया कि उसने जयगढ किला देखने के बाद आमेर से लौटते हुए इत्र खरीदा था।

पडितजी ने युवक की जेब टटोलकर इत्र की शीशी निकाली। फिर उन्होने नारियल को फोडकर दो भागो मे विभक्त किया और पुन मत्र पढने लगे। मत्र बोलने के साथ-साथ नारियल मे शीशी का इत्र उडेलने लगे। पडितजी जोर-जोर से बोलने लगे, "ले, इत्र ले और वापस जा! ले अपना इत्र!"

युवक का झूमना धीरे-धीरे कम होने लगा। शीशी का सम्पूर्ण इत्र नारियल मे पहुचने के साथ ही, युवक का झूमना बिल्कुल बद हो गया।

पडितजी ने इत्र को नारियल मे बद किया और एक डोर मे नारियल बाधकर युवक के साथी से उसे वापस आमेर की पहाडियो मे फेक आने के लिए कहा।

अब तक प्रेतात्माओ का अस्तित्व नकारने वाले मेरे मित्र के चेहरे पर हवाइया उड रही थी। अपनी आखो के सामने प्रेतात्मा का अस्तित्व देखकर उसके चेहरे की रगत उड गयी थी। वह हैरत मे था।

लेकिन इस घटना से मेरी मनोदशा और अधिक बिगड गयी। मै अपने मित्र का मनोविज्ञान भूलकर नाहरगढ किले और अब यहा आई प्रेतात्मा

मे सम्वन्ध जोडने लगा। मैं सोच रहा था, क्या नाहरगढ किले मे मुझे अपना आचल छुआने वाली और आमेर महल से जयपुर मे इत्र लेने के लिए आई दोनो प्रेतात्माए एक ही है? किले मे आचल की छुअन के साथ-साथ इत्र की भीनी-भीनी खुशवू भी तो आई थी। अवश्य ही यहा वही आत्मा आई थी! मै पुन भयभीत हो उठा, मेरी कपकपी फिर छूटने लगी।

मेरा मित्र, जिसके चेहरे पर आत्मा के अस्तित्व के वोध का भाव अव स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा था, मुझे मदिर के वाहर ले आया। उसने पडितजी को रोककर नाहरगढ किले मे मेरे साथ घटित घटना सुनाई और साथ ही अपनी शका भी व्यक्त की।

हमारी वात को सुनकर पडितजी पहले तो किंचित् गभीर हो उठे, फिर उन्होने हम दोनो को 'आत्मा' का रहस्य समझाया।

पडितजी ने हमे वताया—"आत्मा का अस्तित्व शाश्वत सत्य है। आत्मा शरीर धारण करती है। शरीर-धारण के पूर्व तथा शरीर को त्यागने के वाद भी आत्मा क्रियाशील रहती है। जव आत्मा शरीर धारण करती है तव उसका स्वतत्र अस्तित्व नही रहता। उस समय एक मायावी शक्ति उस पर हावी रहती है। शरीर को त्याग करने के वाद आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व पुन कायम हो जाता है। कभी-कभी शरीर छोड देने के वाद भी आत्मा शरीर वाले परिवेश को वनाये रखना चाहती है। असल मे ऐसा चाहने वाली आत्माए शरीर छोडते समय अतृप्त रह जाती है। तव ये शरीर वाले परिवेश की पुन प्राप्ति हेतु भटकती रहती हैं। कभी-कभी ऐसी आत्माए अपने त्यागे हुए शरीर को धारण किये हुए भी दिखायी दे जाती है। ये आत्माए अपनी अतृप्त इच्छाओ की पूर्ति मे सचेष्ट रहती है। कभी ये अदृश्य रहकर चेष्टाए करती है और कभी किसी के शरीर पर हावी होकर, जैसा कि अभी आप लोगो ने देखा।"

पडितजी की वात सुनकर मेरे मस्तिष्क मे विचित्र-विचित्र विचार कौंधने लगे।

सारे प्रकरण मे पकज भी वुरी तरह विचलित हो गया था। उसे अपना

मनोविज्ञान अब काल्पनिक लग रहा था। वह भी मेरे साथ विचारमग्न हो गया था।

कुछ सोचते हुए पकज ने मुझसे कहा, "कल हम दोनो नाहरगढ किले मे चलेंगे !"

इस सुझाव से मैं बहुत मुश्किल से सहमत हुआ।

अगले दिन हम दोनो नाहरगढ किले मे पहुच गये। पकज एडवेंचरस नेचर का था। वह किले के हर कोने का निरीक्षण कर रहा था, पर मैं अदर-ही-अदर बहुत डरा और सहमा हुआ था। हम दोनो पूरे दो घटो तक किले के अदर-बाहर घूमते रहे, पर हममे से किसी को किसी आत्मा के दर्शन नही हुए, न ही किसी ने साडी के आचल की छुअन को अनुभव किया। मैं पकज को उस दीवार पर भी ले गया जहा मुझे जयपुर शहर देखते हुए आचल की छुअन का अनुभव हुआ था। हम काफी देर तक दीवार पर खडे रहे, पर न तो इत्र की भीनी-भीनी खुशबू आयी और न ही किसी आचल ने हवा के झोंके के साथ हमे छुआ। हम किले से नीचे उतर आये और बिना किसी निष्कर्ष पर पहुचे अपने-अपने घरो को वापस आ गये।

मेरे कुछ परिजन दिल्ली मे जयपुर घूमने आये थे। उन्होने आमेर के ऐतिहासिक महल को देखने की इच्छा व्यक्त की। मैं उनके इस प्रस्ताव को स्वीकार करने मे हिचक रहा था। अदृश्य-अशरीरी आत्माओ का भय अभी तक मेरे मन मे बना हुआ था। मैं महलो-किलो से दूर ही रहना चाहता था।

आमेर चलने मे अपनी असमर्थता के लिए मैं कोई ठीक-सा बहाना नही ढूढ सका। परिजनो की जिद के आगे मुझे झुकना पडा और हम सब दूसरे पहर आमेर के लिए रवाना हो गये।

यहा, उपन्यास के पाठको को, आमेर का सक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है।

आमेर, जयपुर का ही प्राचीन नाम है। प्रारम्भ मे कछवाहा राजपूत शासको की राजधानी आमेर नाम से थी। राजधानी पहाडियो की घाटियो के मध्य वसी हुई थी। १७२७ ई० मे सवाई जयसिह ने आमेर की घाटियो से शहर को उठाया और पहाडियो से घिरे समतल मैदान मे अपने नाम से नया नगर वसाया जो जयपुर कहलाया। नयी और पुरानी राजधानियो मे सडक मार्ग से करीव सात किलोमीटर की दूरी है।

पुरानी राजवानी आमेर मे एक किला (जयगढ), दो महल और दो प्राचीन मदिर है। अन्य भी कई मदिर हैं, जिनमे जैन मदिर मुख्य है, पर इनका निर्माण वाद के समय मे हुआ है और क्योकि इनका सम्वन्ध इस उपन्याम के कथानक से भी नही है, अत यहा इनकी चर्चा निरर्थक है।

महलो मे एक महल पहाड पर अवस्थित है और दूसरा पहाडियो के वीच तलहटी मे। प्रारम्भिक शासक तलहटी मे वनाये गये पहाडियो से घिरे इसी महल मे रहते थे।

यह महल वहुत पुराना है। काफी समय तक कछवाहा राजा इस महल मे रहे। कछवाहा राजपूत अयोध्या के महाराजा रामचन्द्रजी के पुत्र कुश के वशज थे। आमेर मे इनका राज्य ९६७ ई० मे स्थापित हुआ था। उस समय इसका नाम आमेर न होकर ढूढाड था। यहा का प्रथम राजपूत शासक धोलाराय था। धोलाराय नरवर का राजकुमार था। नन्हे राजकुमार धोलाराय के पिता सौंढादेव की अकाल-मृत्यु हो गयी थी। सौंढादेव का भाई राजकुमार धोलाराय को राजगद्दी पर वैठाने के वजाय खुद राजा वन वैठा। खतरा भापकर धोलाराय की मा शिशु धोलाराय को लेकर एक भिखारिन के वेश मे एक रात नरवर के राजमहल मे निकल भागी और मीणा राजाओ की राजधानी खोगाव मे जा पहुची। खोगाव जयपुर से करीव पाच मील उत्तर-पूर्व मे स्थित है।

खोगाव मे नरवर की राजमाता राजकुमार धोलाराय को लिए एक पेड के नीचे भिखारिन के वेश मे वैठी हुई थी। उसे जोरो से भूख लग आयी थी। वालक धोलाराय भी भूख से विलख रहा था। तभी एक ब्राह्मण उस

पेड के पास से गुजरा और भिखारिन की दशा देखकर उसके हृदय मे दया उपजी। उसने उसके लिए आहार का प्रवध किया। ब्राह्मण भिखारिन के चेहरे के तेज और उसके व्यवहार से वहुत प्रभावित हुआ। वह उसे समभा-बुभाकर मीरणा राजा के पास ले गया। मीरणा राजा ने भिखारिन को अपने महल मे दासी के रूप मे रख लिया।

दासी को पाकशाला की मुखिया बना दिया गया। वह प्रतिदिन अपने हाथ से वडे ही स्वादिष्ट व्यजन बनाकर राजा को खिलाया करती थी। मीणा राजा ऐसे स्वादिष्ट व्यजन खाकर वहुत प्रसन्न हुआ और एक दिन इनाम देने के प्रयोजन से उसने दासी को दरवार मे वुलाया। सभा मे वातो ही वातो मे रहस्य खुल गया। यह जान लेने के वाद कि दासी के रूप मे नरवर की राजमाता ही उसके महल मे रह रही है, मीरणा राजा ने राज-माता का यथोचित सत्कार किया और उसे अपनी वहिन बना लिया। अव राजमाता सुख-सन्तोष के साथ अपने दिन काटने लगी और पुत्र घोलाराय को आगे की घटनाओ के लिए तैयार करने लगी। किन्तु राजकुमार घोला-राय वडा कृतघ्न सिद्ध हुआ। जवान होने पर उसने गद्दारी की और एक दिन जब वृद्ध मीरणा राजा सरोवर मे नहा रहा था, धोलाराय ने उसका वध कर डाला और खोगाव को तहस-नहस कर दिया। खोगाव के पास ही आमेर मे उसने अपना नया राज्य स्थापित कर लिया।

धोलाराय ने सर्वप्रथम आमेर मे ही एक ऊची पहाडी पर छोटी-सी गढी—विजयगढी का निर्माण किया, जो कालान्तर मे विस्तृत होकर जयगढ वन गयी। घोलाराय के वशज चार सौ वर्षो तक विजयगढी मे रहकर ही राज करते रहे। फिर उन्होने पहाडी की तलहटी मे नये सुविधा-जनक महल का निर्माण किया और पहाडी से नीचे उतर आये। पर यहा सुरक्षा की दृष्टि से उन्हें हमेशा सतर्क रहना पडता था। इसलिए यह महल उन्हे असुरक्षित महसूस हुआ। पुन पहाडी पर एक भव्य महल का निर्माण शुरू हुआ और सवाई जयसिह ने जव तक नयी राजधानी का निर्माण नही कर लिया, वे इसी महल मे रहकर राज करते रहे।

हम जव आमेर पहुचे, तव वहा काफी पर्यटक आ गये थे।

मैंने एक-एक करके लगभग सभी प्राचीन स्थल अपने परिजनो को दिखाये। जयगढ नही दिखा सका क्योकि वहा किसी को भी जाने की इजाजत नही थी। विशिष्ट व्यक्तियो को भी नही। जयगढ अभी तक जयपुर राजघराने की सम्पत्ति है। वहा दिन-रात कडा पहरा रहता है। सिर्फ 'आपातकाल' के दौरान ही यहा चहल-पहल हुई थी। काग्रेस सरकार ने यहा कथित खजाने की खोज के लिए लाखो रुपये व्यय किये थे। सेना, भूगर्भशास्त्री, इतिहासकार, पुरातत्ववेत्ता व अनेक इजीनियरो की मदद से खजाना पाने के लिए यहा व्यापक खुदाई करायी गयी थी, पर खजाना नही मिला।

मदिर मे सिलादेवी के दर्शन करने के वाद हम सव जलेव चौक (महल का विस्तृत अहाता) मे वैठकर सुस्ताने लगे। आमेर की पहाडी का आकर्षण लगातार मेरे परिजनो को खीच रहा था। वे पहाडी पर चढने का आनन्द लेना चाहते थे। मैंने इस प्रस्ताव का भरपूर विरोध किया, पर मेरी चली नही। सव पहाडी पर जाने के लिए उठ खडे हुए। अनिच्छा से मुझे भी सवके साथ पहाडी पर चढना पडा।

हम गिरते-पडते, हसते-गाते पहाडी की चोटी पर जा पहुचे।

ऊपर काफी समतल स्थल था। वहा वनाया गया परकोटा (शहर की सुरक्षा के लिए वनायी गयी दीवार) हालाकि अनेक स्थानो पर टूटकर ढह गया था, तथापि वह प्राचीनकाल की दर्शनीय कारीगरी और मजवूती को उजागर कर रहा था। परकोटे के साथ थोडी-थोडी दूरी पर जो वुर्ज वने हुए थे, वे तत्कालीन सुरक्षा चौकियो का काम देते थे।

दोपहरी अपना दामन सध्या को थमाने जा रही थी। अव तक आखो को चौंधियाने वाले दिनकर की प्रखरता क्षीण हो चुकी थी। आकाश के एक कोने मे अव यह फैला हुआ लाल गोला ऐसा लग रहा था, जैसे सपूर्ण शौर्य को प्रदर्शित कर चुकने के वाद वुरी तरह थक गया हो और एक कोने मे पडा सुस्ता रहा हो। चुराये हुए शौर्य को लेकर दूसरे कोने मे चन्द्रमा

हसने लगा था। ज्यो-ज्यो सूरज निस्तेज होता जा रहा था, चन्द्रमा का रूप खिलता जा रहा था। लगता था जैसे सूरज के शौर्य का अतिम रसपान कर चन्द्रमा ने चादनी का दूध पिलाकर उसे सुला दिया हो।

ऊपर की प्राकृतिक छटा इतनी मनमोहक थी कि हमे समय का ध्यान ही नही रहा। हम सब ऊपर पहुचकर एक-दूसरे से बिछड गये थे। जिसे जो स्थल भाया वह उस तरफ बढ गया था। मुझे छतरीनुमा बुर्ज आकर्षित कर रहा था, मैं उसी ओर बढ गया। वहा पहुचकर उसके अदर बैठकर यह अनुभव करने की इच्छा हुई कि प्राचीनकाल मे प्रहरियो को यहा बैठकर कैसा लगता होगा। मैं बुर्ज के अदर जाकर बैठ गया। सामने का दृश्य बडा ही मनोरम था। दूर-दूर तक पहाडियो का सिलसिला, तब नाहरगढ का किला और फिर उसके पीछे छिपा हुआ जयपुर शहर !

मैंने कुछ नोट करने की दृष्टि से जेब मे से डायरी और पेन निकाली और लिखने लगा। अभी एक शब्द ही अकित कर पाया था कि किसी ने पीछे से आकर मेरे हाथ को सख्ती के साथ पकड लिया। मैंने चौककर मुडकर देखा, परन्तु वहा मुझे कोई दिखाई नही दिया। जिस सख्ती के साथ मेरा हाथ पकडा गया था, उसकी पीडा से एकाएक मैं चीख पडा और मारे डर के थर-थर कापने लगा।

"डरो मत ! मैं तुम्हारा कोई अनिष्ट नही करूगी।"

यह किसी अदृश्य नारी का मधुर स्वर था।

मैंने पुन मुडकर देखा, वहा कोई न था। फिर वही उडता हुआ आचल मेरे मुख पर आ गिरा।

मैने हिम्मत बटोरी और कापती आवाज मे पूछा, "कौन हो तुम ?"

अदृष्य हाथ की पकड धीरे-धीरे ढीली हो गयी। मेरी कलाई नारी-पकड से मुक्त हो गयी।

नारी-स्वर पुन मुखरित हुआ, " मैं तुम्हारी दुश्मन नही, मित्र हू। बल्कि तुमने तो मुझ पर बहुत-से एहसान कर रखे है !"

"पर मुझे तो कुछ दिखायी नही दे रहा है ? क्या तुम प्रेतात्मा हो ?"

" नही! मैं प्रेतात्मा नही हू। "

" फिर कौन हो ? "

" एक भटकी हुई अतृप्त आत्मा ! "

"मुझसे क्या चाहती हो ? "

"थोडी-सी मदद ! "

" मदद ? एक सासारिक व्यक्ति से ? आत्मा तो स्वय मे सिद्ध-शक्ति होती है। "

" हा! यही तो विडम्बना है।" थोडा रुक कर उसने फिर कहा, " मै तुम्हारे लिए गैर नही हू। तुम ही तो वह पुरुप हो जिसने सर्वप्रथम मेरी कला कीक दर की थी। तुमने ही तो मुझे मेरी मजिल पर पहुचाया था। पर हाय रे मेरा दुर्भाग्य! " आत्मा सुवकने लगी।

मैं मौन था।

" तुम मौन क्यो हो ? क्या तुमने अभी तक मेरी आवाज नही पहचानी ? "

अदृष्ट आत्मा की आवाज सुरीली और मधुर थी जैसे किसी श्रेष्ठ गायिका की होती है। परन्तु मैंने पहले यह आवाज कही सुनी हो, ऐसा मुझे नही लगा हा, फिर मुझे एकाएक याद आया। उस दिन रामचन्द्रजी के मदिर मे युवक पर चढी आत्मा की आवाज, 'इत्र दे दे राजन् 'इत्र दे दे!' मे इसी स्वर की खनक थी। स्मरण होते ही मै सिहर गया और डर के मारे पुन मेरी कपकपी छूटने लगी। मेरी आखो के सामने उस दिन के झूम रहे युवक का चित्र उभर आया। मैंने तुरन्त अपनी जेवो मे से सव कुछ निकाल कर वाहर रखना शुरु कर दिया, ताकि आत्मा विना मन्त्रो के ही अपनी मनचाही वस्तु लेकर चली जाए। मैंने सारा सामान पेन, डायरी, पर्स, कघा, रुमाल और आज ही सुवह मेरी प्रेयसी द्वारा भेजा गया प्रेमपत्र सव कुछ फर्श पर विखेर कर रख दिया। पर आत्मा ने कोई वस्तु नही उठायी।

उल्टा, अदृष्य आत्मा मेरे इस कृत्य पर खिलखिलाकर हस पडी।

"ये सब वस्तुए तुम वापस अपनी जेब मे रख लो। मुझे इनमे से कुछ भी नही चाहिए और तुम्हारे पास इत्र तो है नही।"

मैं हत-प्रभ बैठा रहा।

"तुम मुझसे डरो मत। मैं फिर कह रही हू, मैं तुम्हारा कोई भी अनिष्ट नही करूगी। मुझे तो बस, तुम्हारी मदद चाहिए। मुझे पहिचानने की कोशिश करो। मेरी आवाज पहिचानो। मुझे पहिचान लोगे तो तुम खुश हो जाओगे।" फिर वह स्वय ही कुछ गुनगुनाने लगी।

मैंने स्पष्ट कह दिया, "मैं तुम्हारी आवाज नही पहिचान पा रहा हू।"

"अच्छा!" कहते हुए आत्मा निराश हो गयी। फिर बोली, "मैं तुम्हारे सामने वही सितार बजाती हू जो तुम्हे बहुत ही प्रिय थी और जिसे तुम बडी तन्मयता के साथ बजाया करते थे।"

दूसरे ही क्षण मेरे सामने सितार बज उठा। बहुत पुराना सितार था वह। लगभग पौने दो सौ वर्ष पुराना। पर सितार की झकार आज भी ताजा-सी लग रही थी। सितार के तार जग खाये हुए नही थे। लगता था, जैसे कोई वर्षों से इसे बजाता चला आ रहा है।

मैं सितार को भी नही पहचान सका।

सितार बजना बन्द हो गया।

"अब भी नही पहचान पाये ?"

"नही।"

"ओफ! " आत्मा और भी निराश हो गयी। "तुम तो सब कुछ भूल गये हो! तुम्हे तुम्हे कुछ भी याद नही रहा क्या?"

"मुझे तो कुछ भी याद नही आ रहा है!"

"अच्छा! तो फिर तुम्हारे सामने मैं उसी रूप मे प्रकट होती हू, जिस रूप मे तुमने मुझे पहली बार देखा था।" वह निहायत करुणामय स्वर मे बोली, "अब तो पहिचान लेना मुझे।"

कुछ क्षणो की स्तब्धता के बाद बुर्ज के पूर्वी खम्भे की ओर मुझे कुछ हिलता-सा दिखाई दिया। एक दूधिया सगमर्मरी पाव 'छम' से फर्श पर

आ टिका। पाव धीरे-धीरे ऊपर उठने लगा और जमीन के समानान्तर हो गया। पाव की गठी हुई पिंडलिया देखकर मुझे यह अनुमान लगाते देर नही लगी कि यह पाव किसी नृत्यागना का है। पाव मे विशेप प्रकार की वनी पायल चमक रही थी। दो वार पाव टिकाकर पायल झकृत कर मुझे कुछ स्मरण कराने की चेष्टा हुई। पर मेरे मानस-पटल पर अतीत का कोई चित्र उभर कर नही आया जिससे इस पायल का वोध हो सकता। पाव पुन फर्श पर आ टिका। फिर एक हाथ खम्भे की ओट से वाहर आया। पूरी वाह विभिन्न आभूपणो से सजी हुई थी। ऐसे आभूपण मैंने पहले कभी नही देखे थे। सोने के कगन मे जडे मानक आखो को चौंधिया रहे थे। गोरी मासल वाह के आखिरी सिरे पर, कधे से दो इच नीचे 'सूर्य' की आकृति लिये हुए एक विशेप प्रकार का आभूपण था। दूसरे हाथ की अगुली उस आभूपण पर आ टिकी।

"नहीं! मैं अव भी नही पहचान सका हू।"

मेरे ऐसा कहने पर सारा शरीर खम्भे की ओट मे से निकल कर मेरे सामने आ गया। सामने खडी युवती का रूप देख कर मेरी आखे चौंधिया गयी। साक्षात अप्सरा खडी थी। मैं इस अकल्पनीय रूप को देख कर ठगा-सा रह गया।

मैं विस्फारित नेत्रो से उस रूपसी को देखे जा रहा था।

धीमे-धीमे कदमो से रूपसी मेरे करीव आ गयी। उसने मेरे मुह को अपने दोनो हाथो मे भरकर कहा, "अव तो जान गये न, मैं कौन हू?"

मैंने फिर 'ना' मे उत्तर दिया।

रूपसी के अधरो पर तैर रही मुस्कान एकाएक लुप्त हो गयी। उसके गुलाव की पखुडियो जैसे अधर थोडा-सा काप कर स्थिर हो गये। उसकी शखाकार आखो की पुतलिया नम हो गयी। अपनी पतली-पतली अगुलियो से मेरे होंठ सहलाते हुए उसने पुन पूछा, "सचमुच नही पहिचाना?"

"नही !"

एक कराह के साथ रूपसी चौवारे पर बैठ गयी। उसके चेहरे की लावण्ययुक्त ललाई मन्द पड गयी। उसकी वडी-वडी आखो से दो आसू टपक पडे। "मेरा दुर्भाग्य ! वह भी नही मिले और तुम भी मुझे भूल गये !"

'वह' कौन ? यह प्रश्न मेरे मस्तिष्क मे चक्कर काटने लगा। फिर मै कौन हू जो इस रूप-सुन्दरी को भूल बैठा हू ! मैं स्वय विचारो मे खो गया।

थोडी देर वाद रूपसी उठ खडी हुई। उसने मेरा हाथ पकडा और परकोटे के सहारे चलने लगी।

पहाडी पर दूधिया चादनी की चादर बिछी हुई थी। अकाश मे फैला हुआ लाल गोला पुन शौर्य के प्रदर्शन के लिए अन्तर्धान हो चुका था। परकोटे की लम्वी छाया पहाडी से उतरती चली जा रही थी। मेरी छाया पेडो को लाघती हुई तिर रही थी। अचानक मैं चौक कर रुक गया। सिर्फ मेरी एक ही छाया जमीन पर पड रही थी। मेरे साथ चल रही रूपसी की छाया वहा नही थी।

मेरे रुक जाने से रूपसी भी रुक गयी। वह मुस्कराकर बोली, "भयभीत मत होओ। छाया सिर्फ सासारिक प्राणियो की हुआ करती है।" उसने पुन मेरा हाथ पकडा और चलने लगी।

एक टीले पर आकर वह रुक गयी। जहा हम रुके थे, वहा से सामने की पगडडी की ओर से कुछ अधिक चौडा रास्ता वना हुआ था। रास्ता नाहरगढ किले की ओर जा रहा था। सामने नाहरगढ किले की प्राचीर दिखायी दे रही थी। जहा हम खडे थे, वहा परकोटे मे एक छोटा-सा रास्ता वना हुआ था। सभवत यह नाहरगढ किले से आमेर महल को जाने-आने वाले सदेशवाहको के लिये कोई मार्ग रहा हो।

रूपसी ने सामने की ओर अगुली दिखाते हुए कहा, "मैं इधर से ही भागी थी, तुम्हे अकेले ही उन निर्दयी और क्रूर राक्षसो के चगुल मे

निरीह छोडकर। इसके लिए मैं कई रातो तक रोती रही थी।"

मुझे रूपसी की बातें बिल्कुल समझ मे नही आ रही थी।

उसने पुन मेरे मुह को अपनी हथेलियो मे भरकर कहा, "मैं तुम्हारे उस एहसान को आज तक नही भूली हू। तुम मेरे लिए देवपुरुष हो जिसने न सिर्फ मेरी कला की कद्र की थी, बल्कि मुझे मेरी मजिल तक भी पहुचाया था। परन्तु यह मेरा दुर्भाग्य ही था कि वे मुझे नही मिल सके ," रूपसी पुन रुआसी हो गयी। उसने मेरे गालो से अपने हाथ हटाते हुए कहा, "अब तुम जाओ। बहुत देर हो चुकी है। तुम्हारे परिजन नीचे जलेब चौक मे चितातुर होकर तुम्हारी प्रतिक्षा कर रहे हैं।"

मैं अपने साथ आये परिजनो को भूल ही गया था। स्मरण होते ही मुझे चिता हुई। मैं लौटने को उद्यत हुआ।

रूपसी ने मेरी कलाई पकडकर पूछा, "क्या तुम मुझसे दुबारा मिलोगे ?"

"क्यो नही।"

"डरोगे तो नही ?"

"अब डर किस बात का।"

रूपसी खुश होते हुए बोली, "मैं तुम्हारा कल नाहरगढ किले की उसी प्राचीर पर इतजार करूगी। ठीक उसी जगह, जहा मैंने तुम्हारा पहला स्पर्श किया था।"

मैंने आने का वायदा कर दिया।

"और सुनो।" मैं रुक गया।

"अकेले ही आना। किसी को भी अपने साथ मत लाना और न इस बात का किसी से जिक्र ही करना।"

'अच्छा' कहकर मैं पहाडी से नीचे उतर आया।

मैंने एक बार मुडकर देखा, रूपसी वापस बुर्ज की तरफ जा रही थी। उसकी लाल साडी का आचल हवा मे लहरा रहा था। मैं यह

देखकर दग रह गया कि अधेरे मे भी रूपसी का चेहरा, बाहे, पाव सब साफ-साफ चमक रहे थे। वह सीधी चली जा रही थी, उसने एक बार भी पीछे मुड कर नही देखा।

मै जब नीचे पहुचा, जलेब चौक मे बैठे मेरे परिजनो के मुह पर हवाइया छूट रही थी। मुझे देखते ही उनकी जान-मे-जान आई।

" आ गया ' आ गया ''!" कहते हुए वे सब खडे हो गये।

" कहा चले गये थे तुम ? "

एक के बाद एक, मेरे परिजनो ने प्रश्नो की झडी-सी लगा दी। पर मैंने उन्हे आज के वृत्तान्त के बारे मे कुछ भी नही बताया। यह कहकर उन्हे आश्वस्त किया कि राह भटक कर कही दूर निकल गया था इसलिए लौटने मे समय लग गया।

ईश्वर का धन्यवाद करते हुए सब परिजन जयपुर लौट आये।

अगले दिन मैं नियत समय पर नाहरगढ किले मे पहुँचा। शाम का वक्त था। पर्यटक जल्दी-जल्दी पहाडी से नीचे उतर रहे थे। ऊपर चढने वाला शायद मैं अकेला ही था।

मै किले की दिवार पर आकर खडा हो गया, जहा कुछ दिन पहले रूपसी के आचल की मुझे प्रथम छुअन मिली थी। आज मैं यहा आकर भयभीत नही था। मैं बेफिक्र होकर रूपसी के आने का इन्तजार करने लगा। मुझे अधिक समय तक इन्तजार नही करना पडा। भीनी-भीनी खुशबू आई थी और साडी के आचल ने मेरी पीठ छुई थी। मैंने मुड-कर देखा, मेरे ठीक बगल मे रूपसी खडी थी। वह मन्द-मन्द मुस्करा रही थी, खुश नजर आ रही थी। शायद मेरे समय पर पहुच जाने से वह प्रसन्न थी।

" मैंने देर तो नही कर दी ? "

" नही,!" रूपसी ने मेरा हाथ पकडा और कहा, " चलो, किले के

अदर चलते हैं।" उसने मुझे दीवार से नीचे उतार लिया।

हम दोनो धीमे कदमो से किले की ओर बढ चले। रूपसी के हर कदम साथ उसके पैरो की पायल 'छम छम' आवाज कर रही थी। उसने आज गहरे हरे रग की साडी पहन रखी थी। अपने लम्बे बालो को विशिष्ट पद्धति मे गूथकर उसने लम्बी चोटी बना रखी थी। ऐसा केश-विन्यास मैंने इसके पूर्व कही नही देखा था। केशवर्तिका रूपसी के उभरे हुए नितम्बो पर झूल रही थी। उसकी बडी-बडी सीपनुमा पलकें काजल मे अभिभूत थी। गुलाब की पखुडियो-सरीखे पतले-पतले अधर भी अधिक रसीले लग रहे थे। गोरी बाहे आभूषणो से लदी हुई थी। धवल सग-मर्मरी गालो मे स्निग्धता रिस रही थी। बल खाता हुआ कटि-प्रदेश मादकता उत्पन्न कर रहा था। वह ऐसे चल रही थी जैसे कोई पटरानी अपने महल मे चल रही हो।

हम किले के अन्दर पहुचे। वह मुझे एक खास कमरे मे लाकर रुक गयी।

किले का यह कमरा आकार मे सामान्य होते हुए भी अपनी कुछ विशिष्टता लिये हुए था। कमरे के ठीक मध्य मे एक कुण्ड बना हुआ था। मैंने सुन रखा था कि बीते वक्त मे रानिया इस कमरे मे स्नान किया करती थी। कुण्ड मे गर्म और ठडा दोनो तरह के पानी आने की व्यवस्था थी। रानिया नहाकर शृगार भी इसी कमरे मे किया करती थी। इसके लिए तब पूरी व्यवस्था रही होगी। दीवार मे बना हुआ खाचा आज भी यह बताता है कि किसी समय यहा एक आदमकद शीशा लगा हुआ था।

कुछ क्षणो तक रूपसी कमरे को अपलक नजरो से निहारती रही, फिर धीरे-धीरे चलकर कुण्ड मे जाकर बैठ गयी। देखते ही देखते कमरे का रूप बदल गया। कुण्ड मे कल-कल करता हुआ पानी आ गया। अपने आप ही खाचे मे शीशा जड गया और अनेक प्रकार के वस्त्र, आभूषण और शृगार के सामान कमरे मे सज गये। वह बिल्कुल एक पटरानी

के महल का कमरा हो गया था। मेरे अचरज का कोई ठिकाना न था।

रूपसी बडे इत्मीनान से कुण्ड मे नहाने लगी। उसने अपने बालो को खोलकर मुक्त कर दिया था। जल टूट-टूट कर मोती की शक्ल मे बालो से नीचे रिस रहा था।

मैं ठगा-सा चुपचाप यह सब देखता रहा।

स्नान कर चुकने के बाद उसने चदन की पेटी खोलकर इत्र, कघी, तेल आदि निकाले और आदमकद शीशे के सामने बैठकर शृ गार करने लगी।

उसने नये वस्त्र पहने, पलको पर नया काजल लगाया, नये आभूषण पहने, माथे पर बडी-सी बिंदिया लगायी और फिर आदमकद शीशे मे अपने रूप को निहारा। अपने ही अनुपम सौन्दर्य को देखकर वह मुस्करा पडी। उसने मुझे कोने मे तिपाई पर पडी चादी की डिबिया उठाकर देने को कहा। मैंने डिबिया उठाकर रूपसी को दे दी। डिबिया खोल-कर उसने चुटकी-भर सिंदूर निकाला और अपने माथे के पास ले गयी।

"नही ।" एकाएक चीखकर रूपसी ने सिंदूर दूर फेक दिया। सिंदूर सारे कमरे मे बिखर गया। कमरे की समस्त दीवारें, छत, फर्श, कुण्ड का पानी, आदमकद शीशा, कमरे मे रखी हर वस्तु सुर्ख लाल हो गयी। स्वय रूपसी भी नख-शिख लाल अगारे की तरह दीखने लगी। लाल रग की तीव्रता बढती चली गयी। मैं यह तीव्रता बर्दाश्त नही कर पा रहा था। मेरे लिए कमरे मे और अधिक समय तक खडा रहना असभव-सा हो गया। मैं दौडकर किले के बाहर आ गया। किले के पिछवाडे वाले द्वार के पास आकर मैं रुक गया। मैं बहुत बुरी तरह से हाफ रहा था।

कुछ देर बाद धीमे-धीमे कदमो से रूपसी भी बाहर आ गयी। जो विकरालता कमरे मे उसके चहरे पर आ गयी थी वह अब नही रही थी। उसका चेहरा समान्य हो चुका था और वह पूर्ववत् हरी साडी मे लहलहा रही थी। मुझे यह सब एक स्वप्न जैसा लग रहा था।

रूपसी चुपचाप मेरे करीव आकर खडी हो गयी। उसने अपनी साडी से मेरे घवराये हुए चेहरे के पसीने को पोछा और फिर हाथ पकड कर मुझे सामने की ओर ले गयी।

एक वडी चट्टान के पास आकर वह रुक गयी। रूपसी ने मुझे चट्टान पर वैठ जाने का इशारा किया और वह स्वय भी उस पर वैठ गयी।

"देख लिया न तुमने, सिंदूर मुझे कभी रास नही आया। जव-जव मैंने अपनी माग सिंदूर से सजानी चाही, वह छिटक गया। आज भी मैं सिंदूर माग मे नही भर पाई। वोलो, मैं कव तक तरसती रहूगी ? कव तक इस तरह भटकती रहूगी मैं ?"

" तुम किस के लिए भटक रही हो ? "

" ओह ! अभी भी तुम्हे कुछ याद नही पड रहा है। तुम्हे यह कमरा क्या याद नही पडता ? तुम ही ने तो उस दिन यहा वैठकर घटो सितार वजाया था। तुम्हारे सामने ही तो मैंने नहाकर इसी कमरे मे अपने वस्त्र वदले थे। तुम्ही ने तो उस रात मुझे इस किले की कैद मे से निकाला था।"

" मैंने निकाला था ! "

" हा, तुमने ही तो मुझे मौत के मुह मे से निकाला था। वहुत वडा जोखिम उठाकर। तुमने अपनी जान की परवाह न करके किले की कैद मे से मुझे मुक्त कराया था। इस जघन्य अपराध के लिए तुम्हे मौत की सजा भी हो सकती थी। " थोडा रुककर वह पुन वोली, " मैं रात के अंधियारे मे ही पैदल-पैदल रामगढ चली गयी थी। क्या तुम्हे कुछ याद पडता है ? "

" मुझे तो कुछ भी याद नही पड रहा है। मुझे तो यह याद नही कि मैंने कभी इस कमरे मे सितार वजाया था और तुमने मेरे सामने वस्त्र वदले थे। मुझे यह भी याद नही कि तुम यहा कैद थी। मैंने तो पहली वार कल तुम्हे आमेर मे देखा था। "

"क्या कहा, कुछ भी याद नही पडता ? अरे, उस रात यही हम दोनो ने मिलकर खूब गाया भी था और तब तक गाते रहे थे, जब तक सारे प्रहरी सो नही गये थे।"

" नही! मुझे ऐसा कुछ भी याद नही आ रहा है।"

मेरी बात से रूपसी उदास हो गयी। फिर वह बुदबुदायी, " तुम्हे भी कुछ याद नही, वे भी मुझे भूल गये आखिर मैं कब तक भटकती रहूगी ? "

कुछ क्षणो तक हम दोनो मौन रहे।

फिर रूपसी अपने चेहरे पर दृढता लाते हुए बोली, " बडी मुश्किल से तो तुम मुझे मिले हो। अब मैं तुम्हे सहज मे नही खो दूगी। आज मैं तुम्हे सब कुछ याद दिलाकर छोडूगी। सुनो, मैं तुम्हे आरम्भ से अन्त तक वे सारी बाते बताती हू, निश्चित ही तब तुम मुझे पहचान जाओगे।

रूपसी ने कहना शुरू किया—

" आमेर के राजा भगवानदास ने अपनी बेटी का विवाह मुगल बादशाह से कर रखा था। भगवान दास का दत्तक पुत्र मानसिंह वीर एव कुशल सेनापति था। उसके पराक्रम की तूती दूर-दूर तक बोलती थी। इस नाते मानसिंह ने बादशाह अकबर के दरबार मे विशेष स्थान प्राप्त कर लिया था और शहशाह अकबर ने मुगल सेना के बहुत बडे हिस्से की बागडोर मानसिंह को सभला दी थी। जहा कही विद्रोह होता, मानसिंह को वहा भेज दिया जाता। वह हमेशा विजय का नगाडा बजाता हुआ लौटता। मानसिंह ने मुगल सल्तनत के लिए बगाल, आसाम, बिहार, दक्षिण और काबुल मे अनेक युद्ध लडे। अनेक शासको को पराजित कर मानसिंह ने चारो दिशाओ मे दूर-दूर तक मुगल साम्राज्य को फैलाया। इन लडाइयो मे अपार सम्पत्ति मानसिंह के हाथ लगी। काबुल से तो वह अतुल सपदा ऊटो के काफिले पर लाद कर जयपुर लाया था। इस तरह धीरे-धीरे जयपुर के राजमहल मे बेहिसाब सम्पत्ति का जखीरा जमा हो गया।

"जव शहशाह अकवर वृद्धावस्था को प्राप्त हुए तो दिल्ली मे उत्तराधिकारी के लिए सघर्ष छिड गया। उस समय मानसिंह ने चाहा कि उसकी बहिन का लडका खुसरो गद्दी पर बैठे। इसके लिए उसने जवर्दस्त प्रयत्न भी किये। मानसिंह का मुगल सेना और सरदारो पर बहुत ज्यादा दवदवा था। इसके अलावा उसके पास बीस हजार राजपूतो की शक्तिशाली सेना भी थी। मानसिंह अपने उद्देश्य मे लगभग सफल हो गया था कि तभी शहशाह अकवर ने दस करोड रुपयो की (आज की तारीख मे अरबो रुपये की) विशाल राशि देकर उसे उत्तराधिकार के सघर्ष मे विलग कर दिया। शहशाह अकवर नही चाहते थे कि उनकी राजपूतनी रानी की कोख से जन्मा राजकुमार दिल्ली के तख्त पर बैठे।

"यह विपुल राशि भी जयपुर के खजाने मे आकर जमा हो गयी।"

"मानसिंह के वाद भावसिंह और फिर महासिंह जयपुर की राजगद्दी पर बैठे। ये दोनो राजा मानसिंह की तरह पराक्रमी न होकर उल्टा विलासी, मदिरा-प्रेमी और अयोग्य राजा सिद्ध हुए। इन्होंने जयपुर के खजाने मे कोई उल्लेखनीय वृद्धि नही की।

"महासिंह के वाद मिर्जा राजा जयसिंह आमेर की गद्दी पर बैठे। यह योग्य शासक थे। इन्हे मुगल दरबार मे छ हजारी मनसब का पद प्राप्त था।

"मिर्जा राजा जयसिंह ने अपने पराक्रम की धाक जमायी, अनेक युद्धो मे विजयी रहकर उन्होंने जयपुर के खजाने मे पुन वृद्धि शुरू की। मिर्जा राजा जयसिंह का शौर्य मुगल शहशाह औरगजेव को नासूर की तरह तकलीफ देने लगा। औरगजेव ने इस काटे को हमेशा के लिए समाप्त कर देने की सोचकर एक घिनौनी चाल चली। मिर्जा राजा जयसिंह के दो पुत्र थे—रामसिंह और कीरत सिंह। औरगजेव ने कीरत सिंह को जयपुर का राजा बनाने का भासा देकर गुमराह कर दिया। और इसी बेटे ने अफीम के साथ जहर देकर पिता की हत्या कर दी। परन्तु अपने पिता की हत्या करने वाले कीरतसिंह को औरगजेव ने जयपुर के सिंहासन पर नही

बैठाया और उसे केवल कामा की जागीर देकर ही सतुष्ट कर दिया।

"मिर्जा राजा जयसिंह के बाद रामसिंह और उसके बाद विशनसिंह जयपुर की गद्दी पर बैठा। इन दोनो राजाओ ने अपने पूर्वजो द्वारा इकट्ठी की गयी सम्पत्ति के जखीरे को किसी तरह शत्रुओ की नजरो से बचाये रखा।

"विशनसिंह के बाद सवाई जयसिंह गद्दी पर बैठा।

"सवाई जयसिंह विद्वान एव योग्य शासक होने के साथ-साथ पराक्रमी भी था। उसने दक्षिण मे कई युद्ध जीते और बेशुमार सम्पत्ति अर्जित की।

"सवाई जयसिंह के गद्दीनशीन होने के छ वर्ष बाद मुगल शहशाह औरगजेब की मृत्यु हो गयी। दिल्ली मे गद्दी के लिए पुन सघर्ष छिड गया। शहजादा बेदार बख्त और शाह आलम ने दिल्ली की सल्तनत पर अपना-अपना हक जताया। दोनो ने युद्ध के बिगुल बजा दिये। सवाई जयसिंह ने बेदार बख्त का साथ दिया। धौलपुर के पास मुगल साम्राज्य के दोनो दावेदारो मे जमकर युद्ध हुआ। युद्ध मे बेदार बख्त मारा गया। और आलम शाह विजयी हुआ।

"चूकि जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह ने गद्दी के सघर्ष मे बेदार बख्त का साथ दिया था, इसलिए शहशाह आलम शाह उससे सख्त नाराज हो गया। उसने जयपुर पर आक्रमण के लिए मुगल सेना भेज दी। राज-पूतो ने मुगल सेना का डटकर सामना किया और उसे पराजित करके दिल्ली की तरफ खदेड दिया। मुगल सेना की पराजय से सवाई जयसिंह की धाक जम गयी और वह निडर होकर जयपुर का शासन करने लगा।

"सवाई जयसिंह को आमेर की पहाडियो के बीहड मे बसे शहर से सतोष नही हुआ। उसने पहाडियो की दूसरी तरफ के समतल मैदान के जगल को कटवा कर वहा एक नया शहर बनवाया। विद्याधर-जैसे कुशल शिल्पी की मदद से उस समय के बत्तीस करोड रुपयो से नये शहर जय-पुर का निर्माण पूरा हुआ।

"परन्तु जयपुर शहर बसाने मे जितना धन खजाने मे से निकाला

गया, उससे कही अधिक खजाना सवाई जयसिंह के शासन के दौरान उस खजाने मे जमा किया गया। इस तरह जयपुर के खजाने मे निरतर वृद्धि होती रही।

"सवाई जयसिंह ज्योतिष विद्या का भी प्रकाण्ड पडित था। उसे चद्र, सूर्य और दूसरे ग्रहो-नक्षत्रो का अच्छा ज्ञान था। उसने ज्योतिष के अनेक यत्रो का आविष्कार किया। सवाई जयसिंह द्वारा दिल्ली, जयपुर, उज्जैन, वाराणसी और मथुरा मे बनवाए गये 'मानमदिरो मे उनके समस्त ज्योतिष-यत्र अब भी वहा सुरक्षित रखे है।

"सवाई जयसिंह द्वारा ज्योतिष-यत्रो का निर्माण सात वर्षो तक चलता रहा। बाद मे जब उसे सूचना मिली कि समरकद मे ज्योतिष-सबधी कुछ विशिष्ट यत्रो का निर्माण किया गया है तो सवाई जयसिंह ने समरकद के राज-ज्योतिषी उलगबेग द्वारा बनाये गये वे यत्र जयपुर मगवाये परन्तु इन यत्रो का प्रयोग किए जाने पर इन्हे सतोषप्रद नही पाया। तभी जयसिंह को पता चला कि पुर्तगाल मे भी ज्योतिष विद्या पर अच्छा काम हुआ है। उसने पुर्तगाल के ज्योतिषी मिशनरी पादरी मैन्युल को जयपुर आने के लिए आमत्रित किया। चूकि पादरी अपने बनाये हुए ज्योतिषी-यत्र अपने साथ नही लाया था इसलिए अपने यहा के कुछ ज्योतिष-विद्वानो को पादरी द्वारा निर्मित यत्रो का अध्ययन करने के लिए सवाई जयसिंह ने उन्हे पुर्तगाल भेजा। सवाई जयसिंह के ज्योतिष-प्रेम से पुर्तगाल का महाराजा बहुत प्रभावित हुआ। उसने अपने राजकोष से व्यय करके जेवियर डी सिलवा नामक व्यक्ति के साथ पुर्तगाल के महान ज्योतिषी डिला हायर के बनाये हुए ज्योतिष-यत्र जयपुर भिजवाये। कालान्तर मे इन यत्रो से सवाई जयसिंह को भविष्यफल ज्ञात करने मे काफी सहायता मिली।

"एक दिन जयपुर के ज्योतिष-यत्रालय मे सवाई जयसिंह ज्योतिष-विद्या द्वारा अपनी भावी पीढियो का भविष्य देख-परख रहा था। जो 'भविष्य फल' उसे ज्ञात हुआ उससे वह निहायत चितित हो उठा। अगले ही

दिन सवाई जयसिंह ने अपने विश्वस्त सामतो की एक गुप्त सभा बुलाई और उन्हे बताया 'मेरा ज्योतिप-ज्ञान कह रहा है कि हमारी आने वाली पीढी अत्यन्त कष्ट मे रहेगी। आने वाले शासक अधिक योग्य सिद्ध नही होगे। उनमे आवश्यक विवेक का अभाव रहेगा और असीम विपदाओ से वे घिरे रहेगे। राजकोप के लूटे जाने की भी सभावना है। अत मै अपनी भावी पीढियो के लिए पर्याप्त धन सुरक्षित रख देना चाहता हू।'

"सामन्तो मे गभीर मत्रणा हुई और खजाने को छुपाकर गुप्त स्थान मे गाडे जाने की एक अत्यन्त गोपनीय योजना वनाई गई।

"खजाना गाडने का कार्य अमावस्या की आधी रात को शुरू किया गया। मजदूरो की आखो पर पट्टिया बाध कर उन्हे हर रोज घुमावदार मार्गों से खजाना गाडे जाने वाले स्थान पर ले जाया जाने लगा और दो महीनो के अथक परिश्रम के बाद वडे ही तिलिस्मी ढग से 'खजाना' जमीदोज किये जाने का कार्य सम्पन्न हुआ।

"कहा जाता है, खजाना गाडे जाते समय एक वार एक सामत की नीयत मे फर्क आ गया और वह चोरी-चोरी खजाने के रास्ते का वीजक (नक्शा) बनाने लगा। गुप्तचरो से इस बात का पता चलते ही जयसिंह ने खजाना गाडे जाने वाले स्थान पर पहुचकर उस सामत का वध कर दिया।

"कहते हैं, उस सामत की तडपती हुई आत्मा ने जयसिंह को शाप दिया और खजाने का असली वीजक जो स्वय सवाई जयसिंह ने वनाया था एकाएक रहस्यमय ढग से खो गया। उस समय सवाई जयसिंह वीमार था। वीजक वहुत ढुढवाया गया, पर् नही मिला। जयसिंह ने पलग से उठने के वाद अपनी याददाश्त के आधार पर पुन नया वीजक वनाने की सोची परन्तु वह पलग से उठ ही नही सका और लम्वी वीमारी के वाद, विना नया वीजक वनाये ही उसने दम तोड दिया।

"जैसा कि ज्योतिष मे फलित हुआ था, सवाई जयसिंह के वाद जयपुर राज्य के सिंहासन पर वैठने वाला उसका लडका ईश्वरीसिंह योग्य

शासक सिद्ध नही हुआ । वह पराक्रमी भी नही था । सन १७४७ ई० मे अव्दाली से युद्ध करने के लिए वह सतलुज नदी के किनारे पहुचा जरूर था परन्तु करारी हार खाकर वापस जयपुर लौट आया । इस युद्ध की पराजय से उसकी प्रतिष्ठा को काफी धक्का पहुचा । युद्ध मे धन-जन की भी व्यापक हानि हुई । ईश्वरी सिह इस झटके को वर्दाश्त नही कर सका । वह दिन-प्रतिदिन कमजोर होता गया । इसी बीच उसके सौतेले भाई माधोसिंह ने जयपुर की गद्दी पर अपना हक जताया और विद्रोह कर दिया ।

"माधोसिंह स्वर्गीय जयसिंह की उस रानी की संतान था, जिसकी मेवाड के राणा ने जयसिंह के साथ इस शर्त पर शादी की थी कि राणा वंश की राजकुमारी से विवाह के वाद यदि उसकी कोख से लडका हुआ तो वह ही जयपुर का राजा बनेगा और यदि लडकी पैदा हुई तो वह किसी भी सूरत मे मुगलो को नही व्याही जायेगी ।

"और माधोसिंह ने इसी शर्त के आधार पर अपने को जयपुर का राजा घोषित कर दिया । उसने ईश्वरीसिंह को युद्ध के लिए ललकारा । मेवाड के राणा तथा कोटा और बूदी रियासतो के शासको ने माधोसिंह के साथ मिल कर राजमहल नामक स्थान पर ईश्वरीसिंह से युद्ध किया । इस युद्ध मे ईश्वरीसिंह विजयी अवश्य हुआ, परन्तु अपार धन-जन की हानि हुई होने के कारण जयपुर का राजकोष काफी हद तक खाली हो गया । ईश्वरीसिंह इस सबसे वेखबर जीत के उन्माद मे अय्याश बन गया । यहा तक कि वह अपने ही मत्री की बेटी पर आसक्त हो गया । उस तरुणी को नित्य छत पर खडी हुई देखने भर के लिए उसने ईश्वरीलाट का निर्माण करवा डाला । यह ईश्वरीलाट जयपुर के मुख्य वाजार त्रिपोलिया मे छोटी कुतुवमीनार की तरह आज भी वहा खडी है ।

"उधर माधोसिंह युद्ध मे हारकर भी निराश नही हुआ था और न ही हार मे उसके हौसले पस्त हुए थे । उसने अपनी शक्ति और सेना को पुन संगठित किया । होल्कर से उसने संधि करके उसकी सहायता भी

प्राप्त कर ली और दुवारा सेना लेकर जयपुर पर आक्रमण कर दिया। विलासित मे डूबा हुआ ईश्वरीसिह हार गया। माधोसिह जयपुर का नया शासक बना।

"माधोसिह द्वारा जयपुर के शासन की बागडोर सभालने तक जय-पुर राज्य का राजकोष खाली हो चुका था। माधोसिह के सामने भयकर आर्थिक सकट उत्पन्न हो गया। उसने अपने पिता सवाई जयसिह द्वारा ज़मीदोज खजाने की खोज करने की सोची।

"उन सामतो को बुलाया गया जिनकी देख-रेख मे खजाना ज़मीदोज़ किया गया था। सामन्तो ने माधोसिह को बताया कि वे खजाने के बारे मे कुछ भी नही बता सकते, क्योकि खजाने को जमीदोज़ किये जाने का बीजक (वर्णनात्मक नक्शा) स्वय स्वर्गीय महाराजा जयसिह ने तैयार किया था और उन्होने बीजक किसी को भी नही दिखाया था। सामन्तो को भी मजदूरो की ही तरह आखो पर पट्टी बाधकर खजाना दफनाये जाने वाले स्थान पर ले जाया जाता था। सामन्तो को अलग-अलग दिशा से ले जाकर हर एक से एक हिस्से की ही सुरग खुदवायी गयी थी जिससे सुरगो का सिलसिला गडबड हो जाने से किसी की भी समझ मे नही आया था।

"माधोसिह को सामतो से खजाने के बारे मे कुछ भी अता-पता नही चल सका। तब माधोसिह ने खोये हुए बीजक की तलाश शुरू करवायी। चन्द्रमहल और जयगढ का चप्पा-चप्पा छान मारा गया, पर बीजक का कही पता नही मिला। कुछ नकली बीजक अवश्य मिले जो स्वर्गीय महा-राजा जयसिह ने मात्र दुश्मनो को गुमराह करने के लिए बनवा रखे थे।

"महाराजा माधोसिह अपने सत्रह वर्ष के शासन के दौरान दबे हुए खजाने की तलाश पूरी सरगर्मी से कराता रहा। खजाना ढूढते-ढूढते ही वह परलोक सिधार गया।

"माधोसिह के बाद उसका बेटा पृथ्वी सिह जयपुर की गद्दी पर बैठा परन्तु वह अधिक दिनो तक राज नही कर सका। एक दिन एकाएक घोडे

से गिरकर वह मर गया। तव उसका छोटा भाई प्रताप सिंह गद्दी पर वैठा।

"जयपुर रियासत की माली हालत दिन-प्रतिदिन वद से वदतर होती जा रही थी। राजकोष मे कमी आ जाने की वजह से प्रताप सिंह को सेना के खर्च मे भारी कटौती करनी पड गई। जयपुर की शक्ति को क्षीण हुआ देखकर कुछ महत्त्वाकाक्षी सरदारो ने सिर उठाने शुरू कर दिये।

"फिर तो प्रताप सिंह की शक्ति विद्रोही सरदारो को दवाने में ही लग गयी। उसी समय जयपुर के प्रधानमत्री खुशहालीराम ने एक जवर्दस्त चाल खेली। खुशहालीराम धूर्त और कपटी स्वभाव का व्यक्ति था। वह प्रताप सिंह को मरवाकर खुद जयपुर का राजा वनना चाहता था। उसने गुप्त रूप से मुगलो के साथ साठ–गाठ कर ली। वडी धूर्तता के साथ खुशहालीराम ने जयपुर मे माचेडी रियासत निकलवाकर मुगलो को सौंप दी। माचेडी रियासत जयपुर के राजस्व-पूर्ति का सवसे वडा स्रोत थी।

"माचेडी मिल जाने से मुगल वादशाह वहुत खुश हुआ। उसने प्रताप सिंह का तख्ता पलटने के लिये हमदानी खाँ के नेतृत्व मे शाही सेना जय पुर भेजी।

"खुशहालीराम ने प्रहरियो को धन देकर पहले से ही अपने पक्ष मे कर रखा था। मुगल सेना के जयपुर पहुचते ही रात मे प्रहरियो ने शहर के मुख्य द्वार खोल दिये। मुगल सेना जयपुर शहर मे घुस आई। सैनिको ने कत्ले-आम शुरू कर दिया। रात मे गहरी नीद मे सो रहे निहत्थे लोगो को वे मारने-काटने लगे। मुगल सेना ने जवर्दस्त लूट मचा दी।

"महाराजा प्रताप सिंह को रात मे जगाया गया और मुगल सेना के आक्रमण की उसे सूचना दी गयी। प्रताप सिंह खुद अपनी वफादार सेना को लेकर मुगल सेना का सामना करने महल के वाहर आ गया। अपने पराक्रम से उसने मुगल सेना को मार भगाया।

"मुगल सेना जयपुर छोडकर चली तो गयी, पर वह जाते-जाते

काफी नुकसान कर गयी। इसमे राजकोष पर और भी अधिक दवाव पड गया।

"प्रताप मिह ने सरदारो की आपात-मभा वुलायी। सरदारो ने महाराजा के कहने पर पुन एक वार पूर्वजो द्वारा जमीदोज़ खजाने की खोज शुरू की। दो वर्षो तक लगातार खजाना ढूढा जाता रहा पर कोई सुराग नही मिला। महाराजा प्रताप सिंह भी खजाना देखने की तमन्ना लिये ही स्वर्ग सिधार गया।

"प्रतापसिंह के वाद १८०३ मे उसका वेटा जगतसिंह " कहते-कहते रूपसी रुक गयी। रूपसी के चेहरे पर एकाएक वेबसी, विषाद, क्षोभ के भाव उभर आए थे। उसकी आखे तरल हो गयी थी। वह अपने आतरिक दर्द को दवाते हुए वडी कठिनाई से वोल पायी, "उसका वेटा जगतसिंह जयपुर की राजगद्दी पर वैठा।"

अव रूपसी चुप हो गयी थी।

रूपसी कौन है? यह तो अभी तक स्पष्ट नही हो पाया था, पर यह स्पष्ट हो गया था कि रूपसी जयपुर के इतिहास की ही एक कडी है। उसका जयपुर राजघराने से अवश्य कोई घनिष्ठ सम्वन्ध रहा है, तभी तो वह चन्द्रमहल, नाहरगढ और जयगढ किले मे लगे एक-एक पत्थर का इतिहास जानती है। उसने अवश्य ही चन्द्रमहल, जयगढ और नाहर-गढ किले मे निवास किया है। फिर उसकी माग मे सिंदूर क्यो नही भरा जा सका?

रूपसी ने राजसुख भोगा तो होगा, पर सम्भवत वह सुख पूर्णता को प्राप्त होने के पूर्व ही खण्डित हो गया होगा।

महाराजा जगतसिंह का उल्लेख आते ही वह विचलित क्यो हो गयी है? उसकी आखो से दो वूद आसू भी तो टपके हैं! क्या ये आसू उस खण्डित सुख की वेदना को व्यक्त कर रहे है।

एकाएक रूपसी ने कहा, "चलो!"

"कहा।"

" तुम्हारे घर ! "

" मेरे घर ? वहा तुम कैसे चलोगी ? क्या तुम सासारिक दुनिया मे चलोगी ?"

"नही, उस घर मे नही, तुम्हारे असली घर मे। उठो !"

मैं हतप्रभ-सा उठकर खडा हो गया और हम नाहरगढ के पिछवाडे की ओर चल पडे।

आमेर महल का प्राचीन परकोटा आ गया था। परकोटा पार कर हम जयगढ की ओर जा रहे थे।

रास्ता ऊबड-खावड था। चुपचाप मौन चलना मुझे अखर रहा था। मैंने रूपसी के बारे मे अधिक स्पष्ट रूप से जानने के प्रयोजन से कहा, "महाराजा जगतसिह की तो सोलह रानिया थी न ?"

"हा !" रूपसी ने सक्षिप्त-सा उत्तर दिया। उसने यह नही बताया कि वह भी उन सोलह रानियो मे से एक थी या नही !

महाराजा जगतसिह का उल्लेख आते ही वह पुन बोली, "वे बहुत भावुक प्रकृति के आदमी थे। अल्पायु मे ही उन पर शासन की जिम्मेदारी आ पडी थी। वे जब जयपुर के महाराजा बने थे, उस समय मात्र सत्रह वर्ष के थे। महाराजा के अल्पायु होने और उनकी भावुक प्रकृति होने का सरदारो, मन्त्रियो ने बडा ही नाजायज फायदा उठाया। सरदारो ने महाराजा जगतसिह को कभी चैन से राज करने नही दिया। वह हमेशा हुडदग मचाये रहते थे। नित-नया बखेडा खडा कर देते थे। अनेक बार वे महाराजा को गुमराह करने मे सफल हो गये। इसी गुमराही का मैं भी शिकार बनी," कहकर रूपसी पुन चुप हो गयी। फिर वह स्वय ही महाराजा की प्रशसा मे बोली, " उन्हे अनेक युद्ध लडने पडे थे। गिगोली मे हुए युद्ध मे तो उन्होंने जोधपुर के महाराजा मानसिह को कडी शिकस्त दी थी। यह लडाई उदयपुर की अत्यन्त सुन्दर राजकुमारी कृष्णाकुमारी को पाने के लिए हुई थी।"

"क्या उदयपुर की राजकुमारी कृष्णाकुमारी तुमसे भी ज्यादा

सुन्दर थी ? '' मैंने पूछा ।

उसके अधरो पर एक विजित मुस्कान तैर गयी,'' नही । महाराजा जगतसिंह ने एक वार कहा था, मैं कृष्णाकुमारी से सहस्रहगुणा सुन्दर हू । '' वह प्रफुल्लित होते हुए वोली, ''सच। उन्होंने कहा था, तुम विश्व सुन्दरी हो ।''

मैं सोच रहा था, अगर महाराजा जगतसिंह ने इस सुन्दरी को 'विश्व-सुन्दरी' का खिताव दिया था, तो कोई अतिशयोक्तिपूर्ण वात नही कही थी । उदयपुर की राजकुमारी कृष्णाकुमारी भी अवश्य सुन्दर रही होगी, जिसके कारण जयपुर-जोधपुर मे भयकर युद्ध छिडा, परन्तु यह भी तय है कि इस रूपसी के सौन्दर्य ने भी उस काल मे काफी धूम मचायी होगी ।

जयगढ आ गया था । रूपसी रुक गयी । उसने वायी ओर से नीचे उतरने का इशारा किया । अधेरे मे मुझे कोई रास्ता या पगडडी दिखायी नही दे रही थी । मैं रूपसी के निर्देशानुसार चल रहा था । रूपसी ने मेरा हाथ पकड रखा था ।

हम एक टूटी हुई दीवार के पास आकर रुक गये । दीवार किसी खडहर हो रहे मकान की थी । सैंकडो वारिशो के थपेडो से ढह रहे इस मकान के सम्भवत एक-दो कमरे अभी भी ढहने शेष थे ।

रूपसी मुझे लिये हुए दीवार के सहारे चलने लगी । पैरो के नीचे ढही हुई दीवारो का मलवा विखर कर आवाज कर रहा था । मैं एक वार फिर चौक पडा । रूपसी के पैरो के नीचे मलवे के विखरने की आवाज नही हो रही थी, जैसे पत्थरो पर कोई रूई का पुतला चल रहा था ।

मैं वहुत थक गया था । थोडा सुस्ताने के प्रयोजन से मैंने अपनी पीठ दीवार के साथ टिका दी ।

"नही ।'' चीखते हुए रूपसी ने एक झटके से मुझे खीच लिया । धडधडाता हुआ ऊपर से मलवा नीचे आ गिरा । मैंने जिस दीवार से

अपनी पीठ टिकायी थी वह इतनी कमजोर हो चुकी थी कि मात्र इतने ही दवाव से ढह गयी । रूपसी ने मेरी जान बचा ली थी । मैं डर गया और इस खडहर मकान के अन्दर जाने मे इन्कार कर दिया । रूपसी के इस आश्वासन पर कि उसके रहते मेरा किसी भी प्रकार का अनिष्ट नही हो सकता, मैं मकान के अन्दर चला आया ।

गलियारे से होते हुए हम एक हाल मे पहुचे, जिसकी एक दीवार और छत ढह चुकी थी, सिर्फ तीन दीवारे खडी थी । रूपसी ने मेरा हाथ छोडा और वही खडा रहने के लिए कह कर वह अन्दर चली गयी ।

थोडी देर मे मुझे दायी ओर मे प्रकाश की किरणें आती हुई दिखायी दी । रूपसी ने अन्दर मशाल जला ली थी ।

मैं प्रकाश की ओर वढ गया ।

अन्दर पहुचकर मैं आवाक् रह गया । कमरा साज-सामान से भरा-पूरा और सजा हुआ था । इतना सारा सामान अभी तक यहा कैसे मौजूद है, इसका मुझे आश्चर्य हो रहा था ।

छम-छम करती हुई रूपसी मेरे नजदीक आ गयी ।

"मैंने रोशनी कर दी है जय !"

जय ? यह किसके लिए सम्वोधन था ? मेरा नाम तो जय था नही । मैंने मुडकर देखा, वहा मेरे और रूपसी के अतिरिक्त कोई नही था ।

रूपसी ने मेरे गाल को अपनी हथेली से घुमाते हुए कमरे मे रखे सामान की ओर इशारा करते हुए कहा, "मैंने तुम्हारा सारा सामान सभाल कर रख छोडा है जय ! देखो, सब सही है न ?"

मेरी समझ मे कुछ नही आ रहा था ।

रूपसी ने मशाल उठायी और मेरी वाह पकडकर दूसरे कमरे मे ले गयी ।

दूसरे कमरे मे पहुचकर मेरा मस्तिष्क चक्कर खाने लगा । एक अजीव-सी धुन्ध मेरी आखो से हटने लगी । कमरे मे रखी वस्तुए मुझे जानी-पहचानी-सी लगने लगी । मैं दौड-दौड कर एक-एक वस्तु को छूकर

देखने लगा। कमरे मे रखा हुआ पलग, कुर्सी, मेज, दीवार पर लगी खूटी पर टगी पोशाकें, चादी की सुराही, पीकदान, कमरबन्द, आवनूस का वक्सा और तिपाही पर रखा हुआ सितार—सब-कुछ मैंने पहिचान लिया। यह सब मेरा था।

"यह सितार मेरा है " मैं जोर से चिल्लाया। "मैं ही इसे वजाया करता हू।"

" हा । यह सितार तुम्हारा ही है। तुम ही इसे वजाया करते हो। तुम यह सितार वजाते हो, मैं नाचा करती हू। जय । वजाओ सितार। सितार वजाओ, मै नाचूंगी।"

मेरे हाथ मत्र-मुग्ध अपने-आप सितार पर चले गये। उगलियो ने तारो को छेड दिया। सारा कमरा सगीत से झकृत हो उठा। रूपसी के पाव स्वय ही सितार के तारो की स्वर-लहरी मे थिरकने लग गये। वह नाच रही थी मैं सितार वजा रहा था। अचानक मैं चिल्लाया, " रसकपूर ।"

रूपसी ने नाचना वद कर दिया। वह मेरे करीव आ गयी। "ठीक ! तुमने विल्कुल ठीक पहिचाना। मैं रसकपूर ही हू। और तुम तुम ·"

" मैं जयराज हू, गुणीजनखाना का मुखिया ।"

" हा । विल्कुल ठीक स्मरण हुआ जय ।"

" यह यह तो मेरा ही घर है ।"

" विल्कुल ठीक । यह वही घर है जिसमे तुम रहा करते थे।"

"इसे तुमही ने वनवाकर मुझे दिया था ।"

"हाँ । उस समय मैं आधे जयपुर की मलिका थी। अव तो तुम्हे सव याद पड रहा है न ?

"वह शरद-पूर्णिमा की रात । याद है न ? जिस रात तुमने पहली वार मुझे महाराजा जगतसिंह के दर्शन कराये थे। तुमने सितार वजाया था और मैं नाची थी। यही है वह सितार । उस रात मैं खूब नाची थी, गायी थी। महाराजा वहुत खुश हुए थे और उन्होंने

भरी सभा मे 'भरी सभा मे ।"

"मुझे सब याद आ रहा है, रसकपूर! मेरे मस्तिष्क मे एक-एक करके वे सारी घटनाए अब साफ-साफ अंकित हो रही हैं। सचमुच वह पूर्णिमा की ही रात थी! शरद-उत्सव की रात! शीश-महल मे तब विशेष महफिल जमी थी। महाराजा जगतसिंह गुलाबी पोशाक मे पधारे थे। मैंने सितार बजाया था और तुम खूब नाची थी। तुमने खूब गाया था! और महाराजा ने भरी सभा मे भरी सभा मे 'वह पूर्णिमा की रात' "

सन १८०४

शरद पूर्णिमा की रात!

पूरा शहर दुलहिन की तरह सजाया गया था। शहर की हर दीवार को नये गुलाबी रंग से पोता गया था। खिडकियो के मटमैले काच बदल कर तरह-तरह के रंग-बिरंगे नये साफ-स्वच्छ काच लगा दिये गये थे। हर मकान के मुख्य द्वार को विशेष सज्जा के साथ सजाया गया था। चौराहो पर रंग-बिरंगी झंडिया लगायी गयी थी। विभिन्न चौको मे अच्छी बिछायत की गयी थी।

शरद-पूर्णिमा की रात मे हर वर्ष जयपुर शहर नये सिरे से सज-धज जाता था। यह रात विशेष उत्सव के रूप मे मनायी जाती थी। पूरी रात विभिन्न मोहल्लो मे, मंदिरो मे और राजदरबार मे संगीत की बहार रहती थी। दीपदान के साथ ही पूरा जयपुर शहर संगीतमय हो उठता था।

वृद्धो एवं भक्तजनो को महफिलाना जलसा पसंद नही था अत वे मंदिरो मे चले जाते थे, जहा भक्तिनें (ऐसी वेश्याएँ जो गायन-विद्या मे प्रवीण होती थी और जिनके लिए यौन-व्यापार प्रतिबंधित था) सारी रात कीर्त्तन करती रहती थी। इसलिए आज की रात मंदिरो मे भी

विशेप प्रकार की सजावट होती थी ।

दीप प्रज्वलित हो चुके थे । सध्या निशा को अपना उज्ज्वल दामन थमा चुकी थी ।

रामगज वाजार के 'हसीन वाजार' मे सुवह से नहा-धोकर तैयार हो रही वेश्याए पूरा शृ गार कर, ढेर सारा इत्र छिडककर अपने-अपने ग्राहको के इक्को के आने का इन्तजार कर रही थी ।

जिन वेश्याओ को मदिरो मे जाकर कीर्त्तन करना था, उन्होंने तडक-भडक वाले कपडे नही पहने थे । सादा लिवास मे सादे शृ गार के साथ भजनो की कितावें लिये और हाथो मे तानपूरे थामे अलग झुड मे खडी, अपने ग्राहको का इन्तजार कर रही थी ।

चटकीले लिवासो मे सजी-धजी वेश्याओ के घुघरू अभी से वजने शुरू हो गये थे । विभिन्न झुण्डो मे खडी ये वेश्याए एक-दूसरे का कुशल-क्षेम पूछ रही थी । पैरो के घुघरू उनके हिलने-डुलने से यदा-कदा 'छम-छम' कर वज उठते थे । वे वातचीत करती-करती अपनी कजरारी आँखो की पुतलिया वार-वार सडक की ओर घुमाकर देख लेती थी कि कही उनका ग्राहक आ तो नही गया ।

माणिक चौक चौपड की तरफ से इक्के रामगज वाजार मे आते और पहले से तय हवेली के आगे आकर रुक जाते । अपने ग्राहक को पहिचान कर रूप-सुन्दरिया मुस्करा पडती और साजिदो को इशारा कर छम-छम करती हुई इक्के पर सवार हो जाती । खुशवू विखेरता हुआ इक्का अपने-अपने चौक की ओर चल पडता ।

महाराजा जगतसिंह के गद्दीनशीन होने के वाद यह उनकी पहली शरद-पूर्णिमा थी । पूरे जयपुर शहर मे शरद-उत्सव जोर-शोर से मनाये जाने का एलान पहले से ही कर दिया गया था ।

चन्द्रमहल मे शरद-उत्सव मनाये जाने का विशेष आयोजन किया गया था । शरद-उत्सव मे सम्मिलित होने के लिए महाराजा जगतसिंह की रानियो ,परदायतो और पासवानो ने नये-नये कीमती वस्त्र सिलवाये

थे। रानियो के लिए नये आभूषण बनवाये गये थे। इनके लिए तरह-तरह के कीमती इत्र मगवाये गये थे। इस अवसर पर महाराजा की तरफ से रानियो को स्वर्णथालो मे और परदायतो एव पासवानो को चादी के थालो मे विशेष उपहार भेजे गये थे।

चद्रमहल मे महफिल का आयोजन 'मुकुट महल' मे किया गया था। अपने-अपने ढग से सजकर रानिया, परदायतें, और पासवानें मुकुटमहल मे आकर अपने-अपने निर्धारित झरोखो के पीछे आकर बैठ गयी थी। जिन्हे अर्द्ध रानी की हैसियत व अधिकार प्राप्त थे, वे परदायतें तथा महाराजा की सेविकाए व रखैलें पासवान कहलाती थी।

मुकुटमहल को सजाने मे भी काफी परिश्रम किया गया था। दीवारो पर तरह-तरह के कलात्मक भित्ति-चित्र बनाये गये थे। रग–बिरगी झालरे लटकायी गयी थी। झाड-फानूसो मे सैकडो मोमबत्तिया जलायी गयी थीं। फर्श पर नया ईरानी कालीन बिछाया गया था। महाराजा जगतसिह के बैठने के लिए नया सिहासन बनाया गया था।

महफिल को सफल एव मनोरजक बनाने के लिए गुणीजनखाना के मुखिया जयराज को एक माह पूर्व ही तैयारी करने को कह दिया गया था। और जयराज ने भी महफिल को सफल बनाने के लिए कोई कसर नही उठा रखी थी। उसने ढूढ-ढूढकर कलाकार एकत्रित किये थे। इसके लिए वह जयपुर से बाहर भी हो आया था। कलाकारो को दिन-रात रियाज करवाकर उसने भरपूर मनोरजन का अत्यन्त उमदा कार्यक्रम तैयार कर लिया था।

पिछली बार शरद-उत्सव के आयोजन की रूपरेखा पर विचार करने के लिए दीवाने-आम मे आयोजित सभा मे गुणीजनखाना के मुखिया जयराज ने घोषणा की थी कि वह 'महफिल' मे एक ऐसी सुदर नृत्यागना, सगीतज्ञा रमणी को प्रस्तुत करेगा जिसके अद्वितीय सौन्दर्य, नृत्य-प्रवीणता और मधुर सगीत को सुनकर सब मुग्ध हो जाएगे। जयराज ने घोषणा की थी कि इस रूपवती को उसने ठीक इसी उत्सव के लिए

बडे परिश्रम से खोजा है ।

जयराज द्वारा घोषित रूपसी का सौन्दर्य और नृत्य देखने के लिए दो दिन पूर्व से ही सरदारो का जयपुर मे जमघट लगना शुरू हो गया था । अपनी अपनी मूछो पर ताव दिये बाके राजपूत शायद इस अद्वितीय सुन्दरी का मन मोह लेने की फिराक मे थे ।

सिर्फ सरदारो मे ही नही, पूरे शहर मे महफिल मे पेश होने वाली रूपसी के सौन्दर्य की चर्चा थी ।

ठीक समय पर मुकुटमहल मे सरदारो का आना शुरू हुआ । एक-दुसरे का कुशल-क्षेम पूछते हुए सरदार अपने-अपने निर्धारित स्थानो पर बैठते गये ।

लगभग एक दर्जन परिचारिकाएँ जो सुनहरे वस्त्रो मे वहुत आकर्षक लग रही थी, चादी की सुराहियो मे मदिरा लिए तितलियो की तरह चारो ओर मडरा रही थी । एक बादी प्याला सरदार के हाथ मे पकडा देती और दूसरी बांदी झुककर अदब के साथ प्याला भर देती । चितवनो के आदान-प्रदान के साथ प्याले होठो से लग जाते ।

मदिरा के दौर के साथ ही हलके सगीत की स्वर-लहरी मुकुटमहल मे गूज रही थी। साजिदे अपने हाथ गर्म करने मे व्यस्त थे ।

चोवदार ने ऊची आवाज लगायी —

"होशियार ! सरदारगण होशियार ! समस्त साजिंदे—कलाकारान् होशियार ! अन्नदाता ! कृपानिधान ! राजराजेश्वर महाराजाधिराज सवाई जगतसिहजी बहादुर पधार रहे हैं "

सभी सामन्तो ने अपने प्याले नीचे रख दिये और खडे हो गये। हाल मे निस्तब्धता छा गयी । सगीत रुक गया ।

द्वार पर तैनात प्रहरियो ने झालर सरकाकर कोर्निश की ।

महाराजा जगतसिह प्रधानमत्री के साथ महफिल मे प्रविष्ट हुए ।

सभी सरदार और साजिंदे झुक गये। अपने जुडे हुए हाथ सभी अपने घुटनो पर ले गये और 'खम्भा घणी' कहते हुए ऊपर ले आए। ऐसा तीन

वार उन्होंने किया।

महाराजा के सिंहासनारूढ होते ही सब सरदार और फिर साजिंदे बैठ गये।

तभी गुणीजनखाना का मुखिया जयराज खडा हो गया। उसने घुटनो से ऊपर तक हाथ जोडकर लाने वाली प्रक्रिया द्वारा महाराजा का अभिवादन किया और फिर महाराजा से 'महफिल' शुरू किये जाने की आज्ञा मागी।

महाराजा ने अपना दाया हाथ कुछ ऊपर उठाकर गिरा दिया। यह सहमति का सूचक था।

साजिंदो की ओर उन्मुख होकर जयराज ने अपने दोनो हाथ फैला-कर गिराते हुए कहा, "राग खमाज!"

सकेत मिलते ही मृदग, सारगी, नाद, सतूर, चग, तानपूरा,दिलरूबा, रवाव सव एकसाथ वज उठे।

महाराजा के हाथ मे उनकी विशेष वादी ने प्याला थमाया और दूसरी विशेष वादी ने उसे मदिरा से भर दिया। ये दोनो वादिया ही हर वक्त महाराजा को मदिरा पान कराया करती थी। महाराजा द्वारा प्याला होठो पर लगाते ही सभी सरदारो ने प्याले उठाये और अपने-अपने होठो से सटा दिये।

सर्वप्रथम चार नर्तकियो ने एक सामूहिक नृत्य प्रस्तुत किया। इसके वाद एक गायिका ने गजलें पेश की। फिर आगरा से बुलायी गई तवा-यफ सुल्ताना ने गायन के साथ आकर्षक नृत्य प्रस्तुत किया। सुल्ताना के सौन्दर्य, उसकी अदाओ और उसके थिरकते पावो को देखकर सरदार लोग झूम उठे। सुल्ताना पर चादी के सिक्को की बौछार होने लगी। सिक्को की वारिश होते देख सुल्ताना और भी मस्ती से नाचने लगी। 'महफिल' रगत मे आ चुकी थी।

सुल्ताना नाचते-नाचते थक गयी, पर सरदार लोग 'वाह-वाह' कहने मे नही थके। आखिर सुल्ताना के पाव ढीले पड गये और वह थिरकती

हुई एक तरफ को चली गयी ।

जयराज खडा हुआ । उसने पुन महाराजा को कोर्निश की और सभा को सम्बोधित करते हुए बोला, "अन्नदाता ! अब मैं आप लोगो के सामने ऐसी हूर की परी पेश कर रहा हू जो अद्वितीय सुदरी तो है ही, उसकी नृत्यकला का भी जवाब नही । इतना ही नही, उसके-जैसी सुरीली आवाज भी आप मेहरबानो ने अन्यत्र कही नही सुनी होगी ।" फिर जयराज ने पीछे मुडकर पुकारा, "रसकपूर ! आओ, अब अपनी कला का प्रदर्शन करो !" और यह कहने के साथ ही सितार स्वय जयराज ने थाम ली ।

'छम-छम' की आवाज के साथ धीमे-धीमे कदमो से रसकपूर झालर मरकाकर हाल मे दाखिल हुई ।

हाल के वीचो-बीच आकर रसकपूर सिर झुकाये हाथ जोडकर खडी हो गयी ।

ऐसा लग रहा था, मानो सगमर्मर की कोई प्रतिमा हाल के मध्य आकर खडी हो गयी हो !

सरदारो के प्याले होठो से सटे-के-सटे रह गये । नेत्र विस्फारित हो गये । क्या जवान, क्या वृद्ध—सभी सरदारो के हाथ अपने-आप सीने के वायी ओर चले गये ।

नीले कालीन पर हल्के हरे परिधानो मे झुकी खडी रसकपूर महाराजा के आदेश का इन्तजार कर रही थी ।

महाराजा स्वय रसकपूर के सौन्दर्य मे अपना होशोहवास खो वैठे थे । वे सुध-बुध खोये लगातार रसकपूर को देखे जा रहे थे ।

खडे-खडे जब रसकपूर थक गयी तो उसने पलकें उठाकर महाराजा की ओर देखा ।

पलको का उठना था कि दो सीप सरीखी आखें चमक उठी । महाराजा उन आखो मे डूवते चले गये । उनका हाथ अभी तक आदेश देने हेतु ऊपर नही उठा था ।

रसकपूर कब तक इस प्रकार झुकी खडी रहती ! उसने थोडा-सा पैर हिलाकर घुघरू बजा दिये। महाराजा सहित सभी सरदारो की चेतना वापस लौट आयी। महाराजा ने दाया हाथ कुछ ऊपर उठाकर गिरा दिया। आदेश पाकर रसकपूर तबले की ताल पर थिरकने लगी।

ऐसा लुभावना नृत्य महाराजा ने पहले कभी नही देखा था। रस-कपूर के अग-अग को थिरकते देखकर उनकी आखें फटी की फटी रह गयी थी। रसकपूर बिजली की तरह नाच रही थी। सितार बजाता हुआ जयराज आज एक विशेष प्रकार का आनन्द अनुभव कर रहा था।

सरदार नृत्य देखकर झूम उठे। फिर क्या था, गले मे से मोतियो की मालाएँ निकलने लगी, उगलियो मे से अगूठिया बाहर आ गयी, सब कुछ रसकपूर पर न्यौछावर होने लगा।

अचानक महाराजा सिंहासन से उठकर खडे हो गये।

"बस करो सुदरी ! तुम्हारे नाजुक पाव अब थक गये होंगे।"

महाराजा की कद्रदानी पर दिलोजान से न्यौछावर होते हुए रसकपूर ने नृत्य बद कर दिया।

लडखड़ाते कदमो से चलकर महाराजा स्वय रसकपूर के पास पहुचे।

"सच ! जैसा सुना था वैसा ही है ! ऐसा सौन्दर्य अन्यत्र नही हो सकता !" महाराजा ने रसकपूर का हाथ अपने हाथ मे लेकर चूम लिया, "ये अगूरी आखे, ऐसा सगमर्मरी बदन, गुलाब की पखुडियो-सरीखे होठ अन्य किसी के नही हो सकते ! रूपसुदरी ! क्या नाम है तुम्हारा ?"

"रसकपूर !" कहकर रसकपूर सिर झुकाये खडी रही।

महाराजा ने प्याला एक ओर फेक दिया। अपनी दोनो हथेलियो मे रसकपूर का मुह भरकर ऊपर उठाया और कहा, "रूपसुदरी, मेरी आखो मे देखो।"

महाराजा का स्पर्श पाकर रसकपूर का चेहरा रक्त वर्ण हो गया। लज्जा के भाव चेहरे पर उभर आए। उसने धीरे-धीरे अपनी पलके ऊपर

उठायी। महाराजा की आखो से टकराकर उसकी नजरे वापस नीचे गिर गयी।

सुध-बुध खोये महाराजा ने भरी सभा मे समस्त अदबो को वालाये-ताक पर रखते हुए रसकपूर की ठोडी पकडकर चेहरा ऊपर उठाया और उसके होठो पर भुक गये।

महाराजा का यह आचरण अप्रत्याशित था। सब सरदार यह दृश्य देखकर हक्के-बक्के रह गये।

ऊपर भरोखो से महफिल का आनन्द ले रही रानिया महाराजा के भरी सभा मे एक वेश्या पर आसक्त होकर भुक जाने को अपनी आखो से देख नही सकी और गश खाकर गिर पडी। पारदायतो और पासवानो ने अपनी आखें मूद ली।

"अद्भुत सुदरी! मागो, जो तुम्हे मागना है। आज तुम्हारी हर मुराद पूरी होगी।"

रसकपूर ने अदब जताते हुए कहा, "अन्नदाता! मैं नाचीज इस कृपा के योग्य नही हू। आपके दर्शन सुलभ रहे, यही मेरी अभिलाषा है!"

"है जो तुम्हारी अभिलाषा, वही है अब मेरी भी अभिलाषा! तुम्हारी मुराद पूरी होगी।" प्रसन्नचित्त महाराजा ने एक बार फिर रसकपूर को चूम लिया।

"अन्नदाता! मैं नाचू?" रसकपूर ने पूछा।

"नही! अब यह कोमल शरीर काफी थक चुका होगा। इसे अब आराम चाहिए।" फिर वे सरदारो की ओर उन्मुख हुए, "महफिल समाप्त हुई!"

सभी सरदार महाराजा को कोर्निश करते हुए मुकुटमहल से बाहर चले गये। साजिंदे भी अपने-अपने साज उठाकर चल पडे। अब वहा सिर्फ गुणीजनखाना का मुखिया जयराज अकेला किंकर्त्तव्यविमूढ खडा था।

"जयराज! आज तुमने मुझे वह हसीन तोफा दिया है, जिसके लिए मैं तुम्हे जो भी इनाम दू, वह थोडा है। तुम्हे सागानेर की जागीर बख्शी

जाती है। अव तुम जाओ, कल हाजिर होना। रमकपूर अव यही रहेगी, हमारे पास !"

जयराज ने महाराजा को कोर्निश की और कालीन पर पडे एकमात्र साज सितार को उठाकर चल पड़ा।

महाराजा ने रसकपूर से पूछा, "सुन्दरी ! क्या तुम इस महल मे रहना पसद करोगी ?"

रसकपूर ने महाराजा के सीने पर अपना मिर टिकाते हुए कहा "जैसी अन्नदाता की इच्छा !"

महाराजा वहुत खुश हुए। उन्होने ताली वजाकर सेवको को वुलाया और प्रकाश समाप्त कर देने का आदेश दिया।

शहर मे सर्वत्र चर्चा फैल गयी कि महाराजा ने एक 'भक्तन' (ऐसी वेश्या जिसे किराये पर मदिरो मे भजन गाने के लिए वुलाया जाता था, तथा जिमे शारीरिक पवित्रता वनाये रखना जरूरी होता था, यह सिर्फ मुजरा कर सकती थी, इसके लिए यौन-व्यापार प्रतिवन्धित था) को महल मे रख लिया है। रसकपूर के सौन्दर्य, नृत्यकला और सुरीले स्वर की चर्चा के माथ लोग महाराजा के व्यवहार की कडी आलोचना कर रहे थे।

गुप्तचरो ने नगर कोतवाल को सूचना दी कि जयपुर की रिआया ने रसकपूर को महल मे रखे जाने को पसद नही किया है।

नगर कोतवाल ने शहर और मामन्तवर्ग मे रसकपूर को लेकर हो रही चर्चा से प्रधानमत्री को अवगत कराया।

यह सुनकर प्रधानमत्री चिंतित हो उठे। महाराजा को लोगो की प्रतिक्रिया वताने के लिए वे राजमहल मे पहुचे।

प्रधानमत्री को मुख्य अगरक्षक ने वताया कि महाराजा अभी तक छवि-निवास से वाहर नही निकले है और छवि-निवास मे रमकपूर भी उनके साथ है।

प्रधानमत्री दोपहर तक महाराजा के छवि-निवास से बाहर निकलने का इतजार करते रहे । अन्त मे निराश होकर वह अपने निवास को लौट आये ।

महाराजा शाम तक छवि-निवास से बाहर नही निकले । सध्या मे गोविददेवजी के मदिर मे शख, नगाडो और घन्टियो की जब आवाज हुई तब कही उनकी तन्द्रा टूटी । छवि-निवास के पट खुले और महाराजा रसकपूर के साथ आरती मे शामिल हुए ।

आरती के बाद अप्रत्याशित रूप से रसकपूर ने भजन गाना शुरू कर दिया । सारा चन्द्रमहल मधुर कण्ठ के आलाप से गूज उठा । किसी ने भी इसके पूर्व इतना सुरीला गायन नही सुना था । रानिया यह स्वर सुन कर चौंक पडी तथा भक्तजन अह्लादित हो उठे । पुजारी ने रसकपूर को आशीर्वाद दिया ।

आरती के बाद महाराजा रसकपूर को पुन छवि-निवास मे ले गये ।

पूरे एक सप्ताह बाद महाराजा का खुमार उतरा और वे राजकाज को निपटाने हेतु दरबार मे आये । विभिन्न विभागो के मत्रियो ने राज-काज से सम्बधित कारवाई शुरू की, परन्तु कुछ ही देर मे महाराजा उकता गए । और "प्रधानमत्री से ही पूछ लें । मैं उन्हे अधिकृत करता हू ।" कहते हुए वापस छवि-निवास मे चले गये ।

प्रधानमत्री को, शहर मे हो रही चर्चा और रसकपूर को राजमहल मे पनाह देने पर सरदारो मे हुई प्रतिक्रिया के बारे मे महाराजा को अवगत कराने का समय ही नही मिला ।

प्रधानमत्री ने शीघ्रता से सारा राजकाज निपटाया और समस्या का समाधान ढूढने के प्रयोजन से एकान्त चितन हेतु गोविददेवजी के मदिर के पिछवाडे चले गये ।

दो घटो के गहन चितन के बाद प्रधानमत्री इस नतीजे पर पहुचे कि चूकि रसकपूर को राजमहल मे प्रवेश दिलाने वाला गुणीजनखाना का मुखिया ही है, इसलिए उसका सहयोग प्राप्त किया जाना चाहिये ।

परन्तु जिस समय प्रधानमत्री गोविददेवजी के मदिर से शरवते मे लौटे, गुणीजनखाना का मुखिया जयराज अपने घर के लिए प्रस्थान कर चुका था।

प्रधानमत्री ने मुख्य अगरक्षक से महाराजा के सम्वन्ध मे ताजा स्थिति की जानकारी प्राप्त की। अगरक्षक ने उन्हे वताया कि महाराजा का अव भी वही आलम है जो एक हफ्ते पहले था। प्रधानमंत्री राजमहल से मीधे जौहरी वाजार सव्जीमन्डी मे स्थित जयराज के आवाम पर पहुचे।

दिन भर के रियाज से थककर जयराज अभी थोडी देर पहले ही घर लौटा था और जिस ममय प्रधानमत्री की वग्घी आकर उसके द्वार पर रुकी, वह शयन को जा चुका था।

कामदार ने प्रधानमत्री का अभिवादन किया और अदव के माथ पूछा "क्या मुखिया जयराज को जगा दिया जाए ?"

किंचित सोचकर प्रधानमत्री ने कहा, "नही! उससे कह देना, कल राजमहल मे आते ही मुझसे मिल ले!"

"जो हुक्म!" "कहकर कामदार ने प्रधानमत्री को कोर्निश की।

प्रधानमत्री को रात-भर नीद नही आयी। सारी रात वह ममस्या के विभिन्न पहलुओ पर विचार करते रहे। रसकपूर का भूत जिस हद तक राजा पर चढ चुका था, उसे अव शीघ्र ही उतारना आवश्यक था। अन्यथा रसकपूर यदि महाराजा के पास और अधिक दिनो तक रही तो राजकाज के चौपट हो जाने और अनेक समस्याओ के खडा हो जाने का खतरा था। राज्य की आर्थिक और राजनीतिक स्थिति ठीक न रहने से, जहा राज्य के लिए वाह्य आक्रमण का खतरा वना हुआ था, वहा आतरिक हालात भी अच्छे न थे। कुछ मरदार सिर उठाने लगे थे।

रात-भर चितन के वाद प्रधानमत्री इस नतीजे पर पहुचे कि किसी प्रकार महाराजा के मन मे रसकपूर के प्रति घृणा पैदा की जाये।

रसकपूर कौन है ? कहा मे आयी है ? वह कौन-सी महत्त्वाकाक्षा

रखती है ? और यदि उसे धन का ही लोभ है तो समस्या का शीघ्र समाधान मिल जाने की आशा हो सकती है। उसे पर्याप्त धन देकर वश मे किया जाय और महाराजा के प्रति उसके व्यवहार मे ऐसा परिवर्तन लाया जाय कि महाराजा म्वय ही रसकपूर से घृणा करने लगें। रसकपूर के बारे मे विस्तार से जयराज से जाना जा सकता है। प्रात उससे मिलकर ही समस्या का हल ढूढने का निश्चय करके प्रधानमत्री ने अपनी आखे बन्द कर ली।

सवेरे समस्या सुलझने के बजाय और अधिक उलझ गई। प्रधानमत्री जब राजमहल मे पहुचे, उन्हे बताया गया, महाराजा एक पखवाडे के लिए रसकपूर को लेकर चन्द्रमहल से जयगढ को चले गये हैं। महाराजा ने किसी को भी जयगढ आने के लिए प्रतिबधित कर दिया है। प्रधानमत्री के लिए हिदायत छोड गये है कि वे उनकी अनुपस्थिति मे आवश्यक राज-काज निपटाते रहे।

प्रधानमत्री जलेब चौक स्थित अपने कार्यालय मे आ गये और जय-राज की प्रतीक्षा करने लगे।

उन्होने अभी आवश्यक कागजात देखने शुरू किये ही थे कि चोबदार ने आकर सूचना दी—चादसिह मिलने आये हैं।

चादसिह जयपुर रियासत का प्रभावशाली सामन्त था। राजमहल के अन्दर और बाहर उसकी काफी प्रतिष्ठा थी। वह प्रखर राजनीतिज्ञ और कुशल सेनापति था। जयपुर दरबार मे तो वह एक प्रमुख सलाह-कार माना जाता था।

प्रधानमत्री ने तुरत चादसिह को अदर भेजने के लिए कहा।

प्रधानमत्री ने समझा, दूनी का सामन्त चादसिह किसी राज-काज से आया होगा, परन्तु वार्ता से पता चला कि वह भी रसकपूर की समस्या से चिंतित होकर आया है। चादसिह ने, 'महफिल' मे महाराजा द्वारा किये गये आचरण और रसकपूर को लेकर महल मे बैठे रहने पर, प्रधान-मत्री के सामने गहरी चिंता व्यक्त की। प्रधानमत्री ने भी अपनी चिंता

चादसिंह की चिंता के साथ जोड दी और दोनो एक माथ समस्या का समाधान ढूढने लगे । काफी सोच-विचारकर चादमिह ने सुझाया कि रसकपूर को त्याग देने के लिये राजमाता द्वारा महाराजा पर दवाव डलवाया जाय । प्रधानमत्री को यह सुझाव किसी हद तक उपयोगी लगा ।

दूनी के सामन्त चादमिह और प्रधानमत्री के वीच विचार-विमर्श अभी चल ही रहा था कि चोवदार ने जयराज के आने की सूचना दी ।

"हाजिर किया जाय !" जवाव दूनी के सामन्त ने दिया ।

जयराज के लिए प्रधानमत्री द्वारा इस प्रकार वुलाया जाना अप्रत्याशित था । विशेप परिस्थितियो मे ही प्रधानमत्री मुखियाओ को अपने कार्यालय मे वुलाया करते थे, अन्यथा सारी वातचीत राज-काज निपटाये जाने के दौरान शरवते मे ही हो जाती थी । जयराज किमी भावी शका से ग्रस्त अदर दाखिल हुआ ।

प्रधानमत्री ने विना वक्त जाया किये जयराज से पूछा, "रसकपूर कौन है ? तुम इसे कहा से लाये हो ? वह क्या चाहती है ? क्या वह धन की लोभी है ?"

एकाएक इतने सारे प्रश्न पूछे जाने मे जयराज हतप्रभ रह गया । वह हाथ जोड़े खडा रहा ।

दूनी के मामन्त चादमिह ने अपनी मूछो पर ताव देते हुए और तोद पर वधे रेशमी कमरवन्द की गाठ को मजवूत करते हुए जोर मे कहा "सव सच-सच वताओ !"

रसकपूर के वारे मे जयराज जितना जानता था, वह उसने विना हेर-फेर के वता दिया । जयराज ने उन्हे वताया कि रसकपूर एक 'भक्तन' थी । जयपुर मे कही वह वाहर से आयी थी । हालाकि वह वनिया परिवार की है, पर लाचारी मे उसे जयपुर आकर यह पेशा अख्तियार करना पडा था । अन्य भक्तनो के साथ उसे भी मदिरो मे किराये पर भजन गाने के लिए वुलाया जाता था । इधर वह अपने मधुर कण्ठ की वजह से शीघ्र ही मदिरो मे लोकप्रिय हो गयी थी । उसे भी वह एक मदिर मे ह

मिली थी। उसकी आवाज से प्रभावित होकर ही जयराज ने उसे गुणीजन-खाना मे बुलवाया था और शरद-उत्सव के लिये तैयार किया था।

अपनी मूछो पर हाथ फेरता हुआ चादसिंह कुछ देर तक सोचता रहा, फिर उसने जयराज को इशारा कर चले जाने को कहा।

जयराज चला गया।

दूनी के सामन्त ने प्रधानमत्री को एक और सुझाव दिया, "मेरा विचार है कि एक और महफिल का आयोजन किया जाय।"

चादसिंह के इस सुझाव से प्रधानमत्री चौक पडे, "ऐसा किस लिए?"

चादसिंह ने महफिल का उद्देश्य प्रधानमत्री को बताया। प्रधानमत्री ने सिर हिलाकर सहमति व्यक्त की।

एक पखवाडे के वाद महाराजा जगतसिंह जयगढसे नीचे उतर आए,

चन्द्रमहल मे पहुचते ही उन्होंने मिस्त्रीखाना के मुखिया को बुलवाया और जयगढ मे कुछ नये निर्माण किये जाने का आदेश दिया। रसकपूर को जयगढ उतना आरामदायक नही लगा था।

आदेशानुसार मिस्त्रीखाना का मुखिया एक सौ मजदूरो और कारीगरो के साथ जयगढ के नवीनीकरण और सौन्दर्य-अभिवर्द्धन मे जुट गया।

चन्द्रमहल के भी एक खण्ड को नये सिरे से सजाया गया और उसमे रसकपूर का आवास वनाया गया। महाराजा जगतसिंह ने रसकपूर के आवास का नाम 'प्रियतम निवास' रखा। रसकपूर की सेवार्थ दो दर्जन नयी परिचारिकाओ की नियुक्ति की गयी।

जयगढ से लौट आने के वाद महाराजा राज-काज मे आशिक रुचि लेने लग गये थे। प्रधानमत्री और दूनी का सामन्त चादसिंह कोई-न-कोई काम निकालकर महाराजा को अधिक से अधिक व्यस्त रखने का प्रयास करते रहते थे।

शहर मे रसकपूर को लेकर उठी चर्चा खत्म तो नही हुई थी पर

हा, ठडी जरूर पड गयी थी। चन्द्रमहल मे भी प्रातकाल और सध्या की आरती के समय रसकपूर के भजनो के आलाप की सुरीली आवाज ने रानियो, परदायतो और पासवानो के क्षोभ को भी काफी हद तक कम कर दिया था।

महल मे प्रतिष्ठित होने के वाद रसकपूर ने विवेक से काम लेना शुरू किया। शहर मे उसको लेकर हुई चर्चा और जनानी डयौढी मे हो रही फुसफुसाहट से वह परिचित थी। हर वक्त महाराजा के उसकी खुमारी मे पडे रहने से विद्रोह हो सकता था। इस तथ्य को मद्दे-नजर रखते हुए रसकपूर कभी-कभार वीमारी का वहाना कर महाराजा को अन्य रानियो के पास भेज दिया करती थी।

उधर अपनी योजनानुसार प्रधानमत्री के साथ मिलकर दूनी के सामन्त ने आमेर के महल मे एक विराट जलसे का आयोजन किया। सामन्त चादसिह इस जलसे मे भारी भीड एकत्रित करना चाहता था। अत जलसे का भारी प्रचार किया गया तथा हर खास नागरिक को इस मे सम्मिलित होने के लिये आमत्रित किया गया।

दक्षिण से एक सुप्रसिद्ध नृत्यागना को इस जलसे मे नृत्य प्रस्तुत करने के लिसे अपार धन व्यय करके वुलाया गया था। विजयलक्ष्मी नामक यह नृत्यवाला काफी सुदर थी। उसके लम्वे वालो और वडी-वडी शखाकार आखो की कोई तुलना नही थी। दुवली-पतली रसकपूर की अपेक्षा भरे हुए वदन की विजयलक्ष्मी की मामलता विशेष मादकता उत्पन्न करती थी। चादसिह और प्रधानमत्री का दक्षिण की इस सुदरी को जयपुर वुलाने का मतव्य महाराजा को विजयलक्ष्मी के प्रति आकर्पित कर उनको रसकपूर से विलग करना था। अपने उद्देश्य मे सफल होने के लिए दोनो ने गुणीजनखाना के मुखिया जयराज पर भी काफी दवाव डाला था। नृत्य के दौरान सितार-वादन की प्रमुखता को अनुभव करते हुए जयराज से कहा गया था कि वह दक्षिण से वुलायी गयी नृत्यागना विजयलक्ष्मी का नृत्य सफल करे और यदि प्रतियोगिता मे रसकपूर उतर

आये तो उसका नृत्य असफल करा दे ।

दोनो ने अपने विश्वसनीय अनुचरो द्वारा जलसे और विजयलक्ष्मी की सुदरता की खूब चर्चा फैलायी । विजयलक्ष्मी के बारे मे अनेक बातें कही गयी । वह अद्वितीय सुदरी है । उस जैमी बडी आखे विश्व की किसी अन्य स्त्री की हो ही नही मकती । नाचने मे तो वह साक्षात् नटराज है । चौबीस घटो तक लगातार नाचकर भी वह नही थकती । उसका तो हर अग नृत्य करता है । आदि-आदि ।

ऐसी प्रसशा सुनकर लगा जैसे पूरा शहर ही विजयलक्ष्मी को देखने के लिये उमड पडेगा ।

जनानी डयौडी मे अवश्य इस प्रचार की विपरीत प्रतिक्रिया हुई । रानिया, परदायतें और पासवानें आगे ही रसकपूर से परेशान थी, अब महाराजा के मामने एक और सुदर नृत्यबाला के पेश होने की खबर सुनकर उनके चेहरे उतर गये ।

आमेर महल के विशाल जलेब चौक को विशेष रूप से मजाया गया था । चौक के बीचो-बीच एक ऊचा मच बना दिया गया था ।

देखते-देखते जलेब चौक भर गया । तिल रखने की जगह भी शेष नही बची । सरदारगण आकर अपने-अपने नियत स्थानो पर बैठ चुके थे । परिचारिकाओ ने मदिरा के प्याले भरना शुरू कर दिये थे ।

झिलाय के ठाकुर ने इमरदा के रावराजा से पूछा, "यह आयोजन किस उपलक्ष्य मे हो रहा है ?"

जवाब डिग्गी के ठाकुर मेघसिंह ने, मदिरा का प्याला होठो से सटाते हुए दिया, "दक्षिण से एक परी आयी है । उसे महाराजा के सामने पेश किया जा रहा है ।"

'हू !' कहते हुए झिलाय के ठाकुर ने भी अपना चादी का गिलास अधरो पर टिका लिया ।

नगाडा बजा । चोबदार की आवाज गूजी—

"बाअदब, बामोलाहिजा होशियार ! आम रियाया होशियार !

सरदारगण होशियार ! राज राजेन्द्र महाराजाधिराज सवाई जगतसिंहजी बहादुर पधार रहे हैं...।"

सरदारो ने अधरो से प्याले हटाकर नीचे रख दिये और महराजा के सम्मान मे खडे हो गये ।

उपस्थित जनसमुह ने जय-जयकार कर महाराजा का अभिवादन किया।

सब लोग तब तक सिर झुकाये खडे रहे जब तक महाराजा सिंहासन पर बैठ न गये। उनके विराजते ही पुनः एक बार जयघोष हुआ और सभी कोर्निश करते हुए बैठ गये ।

महाराजा रसकपूर को भी साथ लाये थे। उसके साथ आने की पहले से ही सम्भावना थी अतः महाराजा के बगल मे बायीं ओर उसके बैठने की व्यवस्था कर दी गई थी।

रसकपूर शाही पोशाक मे आयी थी। हरे रेशमी लहगे के ऊपर काली चोली और उस पर हरी चुनरी लहरा रही थी। नये आभूषणो ने उसका आकर्षण और अधिक बढा दिया था।

एक तीखी नजर रसकपूर पर फेंकते हुए चादसिंह ने प्रधानमन्त्री के कान मे कहा, "जाने कैसा जादू कर डाला है इस नागिन ने महाराजा पर !"

प्रधानमन्त्री, जो मन्च की ओर देख रहे थे, सिर्फ 'हा' कहकर चुप हो गये।

जनराज मच पर खडा हो गया। उसने महाराजा को कोर्निश की और जलसा शुरु किये जाने की आज्ञा मागी।

आजकल महाराजा हर काम रसकपूर से पूछकर ही शुरु करते थे। उन्होने रसकपूर की ओर देखकर पूछा, "क्या कार्यक्रम शुरु कराया जाये ?"

अधरो पर एक हल्की-सी मुस्कान बिखेरते हुए रसकपूर ने अपनी महीन पतली आवाज मे कहा, "हा !"

महाराजा ने अपना दाया हाथ कुछ ऊपर उठा कर गिरा दिया।

महाराजा से अनुमति पाकर जयराज मच पर बैठे हुए साजिदो की ओर मुडा और दोनो हाथ फैलाकर उन्हे सगीत शुरू करने का आदेश दिया ।

तमाम महल मगीत से गूज उठा ।

दस मिनट तक सगीत की स्वर-लहरी से पहले माहौल बनाया गया और फिर सगीत रुकवाकर जयराज मच पर खडा हो गया । उसने पुन महाराजा का अभिवादन किया और नृत्यसुदरी विजयलक्ष्मी के मच पर आने की घोषणा की ।

लोगो की सासें रुक गयी । हुस्न की परी को देखने के लिए सब बेताब हो उठे । स्वयं रसकपूर, जिसने विजयलक्ष्मी के बारे मे किया गया प्रचार सुन रखा था, विस्मयपूर्ण मुद्रा लिये मच की ओर देख रही थी ।

निस्तब्ध वातावरण 'छम छम' की आवाज से टूटा और बिजली की फुर्ती से विजयलक्ष्मी मच पर आ गयी । विजयलक्ष्मी ने घुघरुओ की एक थाप दी और फिर सिर झुकाकर महाराजा का अभिवादन किया ।

जैसा प्रचार किया गया था, विजयलक्ष्मी लगभग वैसी ही थी । दक्षिण की यह सुदरी ऊपर से नीचे तक एक ही साचे मे ढली हुई थी । पीठ पर झूल रही केशवर्तिका उसके नितम्बो से भी एक बित्ता नीचे तक चली गयी थी । आखें सचमुच बडी-बडी थी । पलको पर विशेष ढग से लगाया गया काजल उसकी सुन्दरता मे अभिवृद्धि कर रहा था । कसे हुए वस्त्रो मे सुन्दरी के वक्षो एव नितम्बो के उभार लोगो के मस्तिष्को मे बिजली कौंधा रहे थे । नीली कचुकी गौराग उन्नत मासल उरोजो को सभाल पाने मे असमर्थ सिद्ध हो रही थी । (सभवत महाराजा को आकर्षित करने के उद्देश्य से विजयलक्ष्मी को जानबूझ कर छोटी कचुकी पहनायी गयी थी ।) नाभि के नीचे दक्षिण भारतीय ढग से बाधी हुई साडी, जघाओ से चिपकी हुई उसकी पिडलियो की सुडौलता को दर्शा रही थी । गौर धवल पीठ पर कचुकी की बधी हुई गहरी नीली डोर के अलावा कुछ न था ।

"सुन्दर! अति सुन्दर!!" सब लोग एक साथ 'वाह-वाह' कह उठे।

महाराजा भी विस्मय-मुग्ध नजरो से विजयलक्ष्मी को देख रहे थे।

महाराजा के चेहरे पर सौन्दर्य के पडे प्रभाव को देखकर चांदसिंह और प्रधानमंत्री बहुत खुश हुए और एक-दूसरे की ओर देखकर अपनी सफलता पर मन्द-मन्द मुस्कराने लगे।

विजयलक्ष्मी ने नटराज की मुद्रा मे एक बार मच पर चारो तरफ घूम कर समस्त उपस्थित दर्शको का अभिवादन किया और फिर तबले की थाप पर उसने नृत्य शुरू कर दिया।

साज जोरो से बज उठे और लय पर विजयलक्ष्मी थिरकने लगी।

विजयलक्ष्मी ने भारत-नाट्यम प्रस्तुत किया। जयपुर की जनता ने कत्थक नृत्य का तो कई बार आनन्द लिया था परन्तु भारत-नाट्यम का भव्य प्रदर्शन आज ही वह देख रही थी।

विजयलक्ष्मी ने भी कोई कसर नही उठा रखी। उसने उच्च कोटी का नृत्य प्रस्तुत किया।

सामन्त और दर्शक झूम उठे। महाराजा भी बहुत प्रभावित हुए। वे विस्फारित नेत्रो से थिरक रही विजयलक्ष्मी को देख रहे थे।

सामन्त चांदसिंह और प्रधानमंत्री की नजरें रसकपूर की प्रतिक्रिया जानने के लिए उसके चेहरे पर गयी। रसकपूर निर्लिप्त भाव से नृत्य देख रही थी। उसके चेहरे पर ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, विषाद, क्षोभ अथवा हीनता का कोई भाव न पाकर दोनो निराश हो गये।

नृत्य पराकाष्ठा पर था। दक्षिण की नृत्यांगना का अंग-अंग नाच रहा था। मांसल शरीर मे उठ-गिर रही लहरें दर्शको को तरंगित कर रही थी। आंखो की पुतलियां बिजली की तरह चमक रही थी। नितम्बो से टकरा कर केशवर्तिका बार-बार ऊपर उछल जाती थी।

दो घन्टो तक लगातार नाचने के बाद विजयलक्ष्मी ने नृत्य समाप्त किया। सारी करतल-ध्वनि हुई।

रसकपूर ने देखा महाराजा ने भी करतल-ध्वनि की है ।

"वाह-वाह !" "खूब नाची !" के शोर से सारा वातावरण गूंज उठा ।

सामन्त चादसिंह 'वाह-वाह' करता हुआ दोनो हाथ फैलाये मच की ओर दौड पडा । वह मच पर पहुंच गया । उसने विजयलक्ष्मी का हाथ चूमकर कहा, "तुम न सिर्फ अनुपम सुदरी हो, एक कुशल नृत्यागना भी हो । मैं दावे के साथ कह सकता हू, तुम्हारे रूप और नृत्य के सामने विश्व की कोई कलाकार नही ठहर सकती । हम तुम पर बहुत प्रसन्न हैं । तुम्हें दूनी जागीर की तरफ से एक सहस्र स्वर्ण मुद्राए उपहार स्वरूप दी जाती हैं ।"

जन-समूह ने पुन करतल-ध्वनि की ।

चादसिंह ने कहना जारी रखा, "और तुम्हे दूनी मे आकर रहने का आमन्त्रण भी दिया जाता है । वहा तुम्हे वैभवपूर्वक बसाया जायेगा ।"

सामन्त चादसिंह और प्रधानमत्री को आशा थी, अठ्ठारह वर्षीय अल्प वयस्क महाराजा विजयलक्ष्मी के रूप और कला पर फिसल चुके होगे और रसकपूर की उपेक्षा करके विजयलक्ष्मी को अपने नजदीक बुला लेंगे । परन्तु उन दोनो ने देखा महाराजा ने ऐसा कुछ नही किया । वे सिर्फ विस्फारित नेत्रो से मच की ओर निहार रहे थे ।

विजयलक्ष्मी मन-ही-मन मे खुश होती हुई दूनी के सामन्त के सामने झुककर अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करने लगी ।

चादसिंह ने एक बार फिर जोर-जोर से कहना शुरू किया, "मैं फिर कहता हू, विजयलक्ष्मी के टक्कर की कोई अन्य रूपसी और कलाकार इस धरती पर हो ही नही सकती ।"

रसकपूर से अब रहा नही गया । उसने सामन्त चादसिंह की चुनौती स्वीकार की और अपनी जगह से उठकर खडी हो गयी । रसकपूर ने महाराजा से अपनी कला प्रदर्शित करने के लिए आज्ञा मागी । रसकपूर की आखो मे नृत्य करने की प्रबल और स्पष्ट इच्छा को देखकर महाराजा

ने उसे नृत्य करने की इजाजत दे दी ।

रसकपूर सीधी मच पर पहुची । उसने विजयलक्ष्मी द्वारा उतारे गये घुघरू अपने पैरो मे बाधे और जयराज की ओर मुडी । जयराज चुपचाप मुह झुकाये बैठा था । प्रधानमत्री और सामन्त चादसिंह ने उस पर रसकपूर का साथ न देने के लिए दवाव जो डाला हुआ था । स्थिति का अनुमान लगाते हुए रसकपूर ने कहा, "कला की कद्र करने वाला ही आज कला की हत्या करना चाहता है !"

जयराज ने एक वार सिर उठाकर ऊपर देखा, फिर पुन नीचे देखने लगा ।

महाराजा वोले, "रसकपूर, नृत्य शुरू करो !"

"महाराजा ! मै तव तक नही नाच सकती जव तक जयराज स्वय सितार वजाकर मेरा साथ नही देता ।" मच पर से रसकपूर ने कहा ।

"मेरा हुक्म है, जयराज सितार वजाये !"

महाराजा की आज्ञा का पालन करना अनिवार्य था । जयराज मन-ही-मन वहुत खुश हुआ । महाराजा का आदेश होने से वह प्रधानमत्री और सामन्त चादसिंह के कोपभाजन से वच गया । जयराज ने झटपट सितार उठाया और उसकी उगलिया जादू की तरह सितार की तारो पर थिरकने लगी !

रसकपूर ने नृत्य शुरू किया । उसने भी दक्षिण का भारत-नाट्यम ही प्रस्तुत किया । चद क्षणो मे ही उसका एक-एक अग-अग थिरकने लगा । लोग रसकपूर का नृत्य देखकर मत्रमुग्ध हो गये । रसकपूर का नृत्य विजयलक्ष्मी से कही अधिक सधा हुआ और कलात्मक था । नृत्य की समाप्ति पर दर्शको ने दूने जोश के साथ करतल-ध्वनि की ।

रसकपूर अपनी विजय पर मुस्करायी । एक हल्की नजर प्रधानमत्री और सामन्त चादसिंह के चेहरो पर डालकर वह मच से उतर कर महा-राजा की वगल मे आ गयी ।

प्रधानमंत्री और चादसिंह का चेहरा पराजय से उतर गया था ।

हर्षोल्लास के साथ जलसा समाप्त घोषित किया गया ।

अगले दिन जयराज की प्रधानमत्री के यहा पेशी हुई ।

जिस समय जयराज वहा पहुचा, दूनी का सामन्त पहले से ही वहा बैठा हुआ था ।

जयराज ने दोनो प्रमुखो का बारी-बारी से अभिवादन किया और एक कोने मे खडा हो गया ।

प्रधानमत्री की भौहे चढी हुई थी । सामन्त चादसिह तो आपे से बाहर हुआ जा रहा था । जयराज दोनो की क्रुद्ध आखो को अधिक देर तक नहीं झेल सका और उसने अपनी नजरें झुका ली ।

प्रधानमत्री ने कडक कर पूछा, "तुमने तो कहा था, रसकपूर उत्तराखण्ड की रहने वाली है ।"

"जी, हुक्म ! मैंने ठीक ही सुना था । रसकपूर उत्तराखण्ड की ही रहने वाली है !" जयराज ने निहायत नम्रता के साथ कहा ।

"तो फिर वह दक्षिण का नाच कैसे जानती है ?" सामन्त चादसिह ने गर्जते हुए पूछा ।

"मुझे भी इस बात का कल उसका नृत्य देखने के बाद ही पता चला है, हुजूर ! मैं नही जानता, रसकपूर ने दक्षिणी-नृत्य कैसे और कहा सीखा !"

जयराज उन इने-गिने मुखियाओ मे से था, जो कभी विवादास्पद नही रहे । अत उसके साथ अधिक सख्ती से पेश आना प्रधानमत्री को उचित प्रतीत नही हुआ । उन्होंने रसकपूर के अतीत की पूरी जानकारी हासिल कर लाने का आदेश देकर जयराज को विदा कर दिया ।

"जो आज्ञा !" कहता हुआ जयराज दोनो प्रमुखो को नमन करता हुआ चला गया ।

वस्तुत रसकपूर का अतीत क्या था, यह जयराज को भी पता न था । वह जयपुर मे आने के पूर्व कहा रहती थी, क्या करती थी, उसने नृत्य

एव गायन का प्रशिक्षण कहा लिया, यह सब वह नही जानता था। उसने कभी रसकपूर से उसके अतीत के बारे मे पूछा भी नही था। उसे तो केवल इतना ही ज्ञात था कि वह उससे एक मदिर मे मिली थी और उसका सुरीला गायन सुनकर जयराज मुग्ध हो गया था और उसे गुणीजनखाने मे ले आया था।

जब जयराज के निमत्रण पर रसकपूर गुणीजनखाने मे आयी थी तो वह सादे वस्त्रो मे थी। उसके शरीर पर आम वेश्याओ की तरह के भडकीले वस्त्र नही थे। न ही उसकी चाल मे चटक-मटक थी। उसके साफ-सुथरे चेहरे पर किसी प्रकार के वेश्याओ जैसे चिह्न भी नही थे। परन्तु यह सच था कि वह रामगज बाजार मे कभी मुजरा किया करती थी।

रसकपूर की कला और शालीनता से जयराज बहुत प्रभावित हुआ था और उसकी भेंट महाराजा से कराने का उसने वायदा किया था। जयराज ने अपना वायदा बखूबी निभाया था और उसी की बदौलत रसकपूर आज राजमहल मे थी।

अब रसकपूर के सुख मे जयराज किसी प्रकार की भी बाधा उत्पन्न नही करना चाहता था। कुछ दिनो बाद उसने स्वय ही प्रधानमत्री से जाकर कहा, "वह रसकपूर का अतीत ज्ञात करने मे असमर्थ है।" प्रधानमत्री को जयराज के इस नकरात्मक उत्तर से गुस्सा तो बहुत आया, पर उन्होने उसका कोई अहित नही किया।

परन्तु प्रधानमत्री और सामन्त चादसिह शान्त नही बैठे रहे। वे रसकपूर को महाराजा से विलग करने के विभिन्न उपायो पर निरतर विचार-विमर्श करते रहे। वे दोनो राजमाता के पास भी पहुचे और उनसे महाराजा को समझाने के लिए निवेदन किया। राजमाता ने महाराजा के आचरण पर भारी खेद व्यक्त किया और दोनो प्रमुखो को बताया कि जब से उन्होने इस प्रकरण के बारे मे सुना है तब से ही वे दुखी हैं। पर राजमाता ने अपने इकलौते बेटे के दिल को दुखाने मे अपनी असमर्थता व्यक्त करदी। दोनो को यह कहकर राजमाता ने विदा कर दिया कि वे उसकी

तरफ से महाराजा को जाकर कह सकते है कि उनके इस आचरण से राजमाता खुश नही हैं।

दोनो प्रमुख सीधे महाराजा के पास पहुचे और राजमाता की खिन्नता को उन्होंने बढा-चढाकर व्यक्त किया।

राजमाता का सदेश पाकर महाराजा उदास हो गये। परन्तु उन्हे यह समझते देर नही लगी कि इन दोनो प्रमुखो ने ही जाकर राजमाता को भडकाया होगा। महाराजा गभीर हो उठे।

उधर सामन्त चादसिह ने अन्य सामन्तो को सदेश भेजकर जयपुर बुलाया और इस समस्या पर विचार करने का आग्रह किया। सामन्तो के सामने राज्य की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए चादसिह ने कहा, "रसकपूर की वजह से ही महाराजा का मन राजकाज मे नही लग रहा है और वे अधिकाश समय छविनिवास मे व्यतीत करते हैं। इससे राज्य की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गयी है। अकुश और भय न रहने की वजह से अधिकारी स्वच्छद हो गये हैं। उधर गुप्तचरो ने सूचना दी है कि मराठे पुन जयपुर पर आक्रमण करने की योजना बना रहे हैं।

सामन्तो ने समस्या पर गम्भीर रूप से विचार किया और वही एक योजना पर विचार-विमर्श करके उसे अतिम रूप दे दिया।

योजना के अनुसार जनता की असली-नकली फरियादो का एक पुलिदा लेकर प्रधानमत्री महाराजा के पास पहुचे। उन्होंने महाराजा से जनता के मामले निपटाये जाने के लिए एक आम दरबार आयोजित किये जाने की अनुमति मागी। महाराजा ने इसकी अनुमति प्रधानमत्री को दे दी।

शहर मे आम दरबार के आयोजन का शीघ्र ही ऐलान कर दिया गया।

निश्चित दिवस पर, दिन के प्रथम पहर मे दीवाने आम दरबार शुरू हुआ।

सामन्त, मत्री, मुखिया, अधिकारी, फरियादी और नगर के आमन्त्रित प्रतिष्ठित जन अपना-अपना स्थान ग्रहण कर चुके थे।

चोवदार की आवाज गूंजी—

"होशियार ! सरदारान होशियार ! आम रियाया होशियार ! राज राजेन्द्र महाराजाधिराज सवाई जगतसिंहजी बहादुर पधार रहे है ।"

महाराजा दरबार मे रसकपूर के साथ पधारे।

सभी सरदारो, मन्त्रियो, अधिकारियो व अन्य उपस्थित जनो ने खड़े होकर महाराजा को कोर्निश की और फिर उनके बैठ जाने के बाद अपने-अपने स्थान पर सब बैठ गये।

महाराजा से अनुमति प्राप्त कर प्रधानमन्त्री ने सभा की कार्रवाई शुरू की।

पहले कुछ फरियादी मामले उठाये गये। महाराजा ने बिना किसी जिरह-तर्क के सारे मामले चंद मिनटो मे निपटा दिये। प्रधानमन्त्री ने परम्परानुसार फरियादी से बार-बार जिरह करने का प्रयास किया, पर महाराजा ने जिरह मे समय न खोकर वे सब मामले तुरन्त निपटा दिये।

महाराजा जब उठने को उद्यत हुए, तभी सामन्त चांदसिंह अपने स्थान पर खडा हो गया।

"अन्नदाता ! राज राजेन्द्र !! मुझे सामन्तो की तरफ से अदब के साथ आपसे कुछ निवेदन करना है।"

महाराजा ने चांदसिंह को बोलने की अनुमति दे दी।

"अन्नदाता ! मुझे सामन्तो ने आपके चरणो मे कुछ अर्ज करने के लिए अधिकृत किया है, जिसे मुझे आज ही बया करना है।"

महाराजा ने एक प्रश्नवाचक दृष्टि दूनी के सामन्त पर डाली।

"महाराजाधिराज ! अपराध क्षमा हो ! हम सब जयपुर रियासत के सामन्तगण यह महसूस कर रहे है कि कुछ दिनो से राज्य की राजनीतिक स्थिति बिगडती जा रही है। राज-काज सुचारू रूप से नही चल रहा है। छोटे-बडे दीवान, मुखिया और अधिकारी स्वच्छन्द हो गये है। राज्य के खजाने मे निरंतर ह्रास हो रहा है। सिर्फ आन्तरिक ही नही, बाह्य स्थिति भी बिगडती जा रही है। गुप्तचरो ने प्रधानमन्त्री को सूचना दी है कि मराठे

पुन जयपुर पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे हैं। उधर उदयपुर के महाराणा भीमसिंह द्वारा अपनी परमसुन्दर राजकुमारी कृष्णाकुमारी की आपके साथ सगाई कर देने से जोधपुर मे भारी प्रतिक्रिया हुई है। गुप्तचरो ने यह भी सूचना दी है कि जोधपुर के राजा मानसिंह ने उदयपुर की राज-कुमारी पर अपना हक जताया है और कृष्णाकुमारी को प्राप्त करने के लिए वे तलवार तक उठाने को तैयार हैं। जोधपुर के राजा मानसिंह का कहना है कि राजकुमारी कृष्णाकुमारी की सगाई जयपुर के महाराजा से होने के पूर्व उसके भाई के साथ हुई थी। चूकि दुर्भाग्यवश वह शादी के पूर्व ही स्वर्ग सिधार गया इसलिए अब पहले जोधपुर का ही राजकुमारी कृष्णा कुमारी पर हक बनता है। जोधपुर द्वारा इन्कार किये जाने पर ही राज-कुमारी का विवाह जयपुर के महाराजा से होना सभव है। गुप्तचरो की तो यहा तक सूचना है कि जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने जयपुर पर आक्र-मण करने के लिए सेना को तैयार हो जाने का वकायदा आदेश भी दे दिया है। अन्नदाता ! इस प्रकार स्थिति बहुत गभीर बन चुकी है। इन हालत मे हम सब सामन्तो ने कुछ निश्चय किया है।"

"क्या निश्चय किया है ?" महाराजा ने आतुर होकर पूछा।

"हम सब सामन्त सोच-विचार कर इस नतीजे पर पहुचे है कि राज्य की निरन्तर बिगड रही स्थिति का प्रमुख कारण रसकपूर ही है · "

"रसकपूर है ?" महाराजा ने साश्चर्य पूछा।

रसकपूर भी, जो सभा मे मौजूद थी, अपना नाम आने पर चौंक पडी और सतर्क हो गयी।

"जी, महाराजा ! हमे वडे दुख के साथ कहना पड रहा है कि जब से अन्नदाता पर रसकपूर का साया पडा है, तब से राज्य का विनाश होना शुरू हो गया है। यह एक अपशकुनी नारी है, जिसकी वजह से यह राज्य गर्त्त मे "

"रुक जाओ, चादसिंह !" महाराजा क्रोधित हो कर चिल्लाये। तुम लोगो को किसी राजमहिला पर आरोप लगाने का अधिकार नही है !"

दूनी के सामन्त ने दो वार महाराजा को कोर्निश करके अपना अदव व्यक्त किया और फिर उसी लहजे मे वोला, "महाराजा ! अपराध क्षमा हो ! पर सत्य तो सत्य ही रहेगा। जव से रसकपूर का सान्निध्य अन्नदाता को मिला है, अन्नदाता राज-काज भूल गये है। वे अपने कर्त्तव्यो एव परम्पराओ को भी भुला वैठे है। हम निहायत अदव के साथ निवेदन करना चाहते हैं कि अव हम रसकपूर को राजमहल मे एक दिन के लिए भी वर्दाश्त नही करेंगे। यह हमारा अतिम फैसला है।" कह कर चादसिह वैठ गया।

सभा मे सन्नाटा छा गया।

महाराजा ने एक नजर वहा उपस्थित सभी सामतो पर डाली। लगभग सभी सामन्त चादसिह के कथन का मौन समर्थन करते हुए सिर झुकाए वैठे थे।

इसके पूर्व कि महाराजा कुछ वोलते, रसकपूर अपने स्थान से उठकर खडी हो गई। सभा को सम्वोधित करते हुए वह वोली, "सम्माननीय सामन्तो ! मैंने दूनी के सामन्त की वात को वडे गौर से सुना है। उन्होंने जो कुछ कहा है, वह उन्होंने जयपुर राज्य के हित की अन्तर्निहित भावना से प्रेरित होकर कहा है। मैं उनकी भावना का आदर करती हू। राज्य की आर्थिक और राजनीतिक दशा यदि विगड रही है तो यह निश्चित रूप से चिंता की वात है। मैं महाराजाधिराज से निवेदन करती हूं कि वे इस सम्वन्ध मे गभीरतापूर्वक विचार करें। परन्तु आदरणीय सामन्तो ! आपके द्वारा मेरे ऊपर जो दोपारोपण किया गया है, वह उचित नही है।"

"यह उचित है।" प्रधानमन्त्री, जो अव तक चुपचाप वैठे हुए थे, खडे हो गये और चादसिह के कथन का उन्होंने समर्थन किया।

"यह उचित नही है !" रसकपूर ने पुन शालीनता के साथ दोहराया।

"यह विल्कुल सही है !" सामन्त चादसिह और प्रधानमन्त्री ने एक साथ कहा।

रसकपूर के एक तरफ सामन्त चादसिह खडा था और दूसरी तरफ

प्रधानमन्त्री। दोनो की आखें गुस्से से लाल हो रही थी। रसकपूर विचलित नही हुई। उसने कहा, "मैं दोनो माननीय प्रमुखो से पूछना चाहती हू, क्या इस राजमहल मे मेरे अलावा कोई महिला नही रहती ?"

"रहती है! उन्हे राजमहल मे रहने का अधिकार है। वे रानिया है, सम्माननीया एव आदरणीया हैं! पर तुम नही। तुम एक अति साधारण महिला हो जिसे राजमहल की ड्योढी चढने का भी अधिकार नही है।" चादसिंह ने कहा।

"जन्म के समय कोई महिला न साधारण होती है और न ही असाधारण। ईश्वर तो हर प्राणी मे एक जैसे प्राण डालता है। आप उसे रानी या राजकुमारी से सम्बोधित करते हैं जो राजप्रासाद मे जन्म लेती है और उसे वादी से सम्वोधित करते हैं जो एक झोपडी मे जन्म लेती है। मै आप से पूछना चाहती हूं कि क्या यह न्यायसगत है? कौन वडा है और कौन छोटा है, इसका निर्धारण तो गुणो के आधार पर होना चाहिए। चन्द्रगुप्त एक प्रतापी राजा था, उसे क्या किसी रानी ने जन्म दिया था? वह एक दासी का पुत्र था। पन्ना धाय को क्या आप भूल गये? मैं पुन आपसे कहना चाहूगी कि व्यक्ति महान जन्म से नही, अपने गुणो से होता है!"

कुछ क्षणो के लिए सभा मे खामोशी छा गई। सभी सभासद इस 'तर्क-युद्ध' को गभीरता के साथ सुन रहे थे।

"तुम भ्रम उत्पन्न करके अपने को राजप्रासाद मे स्थापित करना चाहती हो। वल्कि इससे भी एक कदम आगे वढ गई हो। चन्द्रगुप्त का उदाहरण देकर तुम यह घोपणा करना चाहती हो कि तुम्हारी कोख से पैदा होने वाला वच्चा जयपुर राज्य का उत्तराधिकारी होने का दावा कर सकता है!"

सामन्त चादसिंह की इस वात पर सभा मे उपस्थित सभी सभासद चौक पडे।

"नही! हर्गिज नही! मेरी ऐसी कोई ख्वाहिश नही है। मैंने तो चद्रगुप्त का उदाहरण देकर कहना चाहा था कि उसे एक ऐसी महिला ने

जन्म दिया था जो एक अति साधारण महिला थी। वस्तुत. पृथ्वी पर मौजूद हर नारी मे असीम शक्ति, विवेक और सहिष्णुता होती है। वह पुरुष से कही अधिक सजग और गुणवान होती है। स्वाभाव से नारी तो पुरुष से कही अधिक वफादार होती है। यह पुरुष की गलती है कि वह कभी-कभी अपने सामाजिक अधिकारो का दुरुपयोग कर अपनी वर्बर इच्छाओ की पूर्ति के लिए नारी की कमजोरी का फायदा उठाकर उसे पथभ्रष्ट कर देता है। नारी मे गुणो का विकास उसके सही चिंतन से होता है, न कि भौतिक साधनो से। सिर्फ राजप्रासाद मे जन्म लेने या प्रवेश पा लेने से ही नारी सर्वगुण-सम्पन्न नही हो जाती। मैं ऐसी अनेक रानियो के उदाहरण दे सकती हू जिनकी दुर्बुद्धि और छल-कपट से अनेक सल्तनतें तबाह हो गईं।"

"हमे नही सुनना ऐसी रानियो के उदाहरण! हम सृजन मे विश्वास करते है, विनाश मे नही! हम तो बस इतना जानते हैं कि महाराजा जगतसिंह की बगल मे बैठी हुई यह रसकपूर एक गैरखानदानी महिला है, जिसे राजमहल मे रहने का कोई अधिकार नही है!" चादसिंह ने कहा।

"किसे कहते है आप खानदानी और किसे कहते हैं गैरखानदानी? बंद कमरे मे जब कोई जन्म लेता है तो वह जन्म के साथ ही खानदानी हो जाता है, और खुले आकाश मे जब कोई पैदा होता है तो वह जन्म के साथ ही अकुलीन हो जाता है! अच्छा, मैं मान लेती हू मैं अकुलीन हूँ। पर क्या मैं सभा मे मौजूद समस्त सामन्तो से पूछ सकती हू, क्या कभी आपने मेरी-जैसी किसी अकुलीन नारी का सानिध्य प्राप्त करने की चेष्टा नही की? अभी उसी दिन आमेर मे आयोजित जलसे मे सामन्त चादसिंह ने दक्षिण की नाचने वाली को एक सहस्र स्वर्ण मुद्राए देकर उसे दूनी मे चलकर रहने का निमत्रण दिया था। सुख भोगने के लिए, मन का चैन पाने के लिए, मुझ-जैसी गैरखानदानी महिलाओ की शरण ली जाती है, और सम्मान देने के लिए राजप्रासादो मे जन्म लेना अनिवार्य माना जाता है! मैं तो कहती हू ऐसी हर नारी सम्मान और आदर की पात्र है जो पुरुष को सुख, सहयोग

और विवेक देती है।"

रसकपूर के तर्कों से सामन्त चादसिंह विचलित हो गया। वेबस चादसिंह ने सामने खडे प्रधानमन्त्री की ओर देखा।

प्रधानमन्त्री ने कहा, "इन मूल्यो का निर्धारण हमारे पूर्वजो ने किया है। वे अविवेकी नही थे। वे जानते थे कि स्त्री पुरुष की कमजोरी होती है। अत उन्होने कुछ प्रतिबन्धात्मक नियम स्त्री के लिए बनाये हैं। राजा की बगल मे सिर्फ रानी ही बैठ सकती है, पुरुष की कमजोरी का फायदा उठाने वाली साधारण नारी नही।"

"स्त्री पुरुष की कमजोरी होती है, यह सिर्फ कमजोर पुरुष ही सोचता है। स्त्री पुरुष के लिए शक्ति होती है, यह पराक्रमी पुरुष कहता है। पुरुष ने हमेशा अपनी कमजोरी को नारी मे आरोपित कर स्वय को बेकसूर सिद्ध किया है। खुद का इद्रियो पर वश रहता नही, भोग-विलासिता के प्रति अपनी आसक्ति को पुरुष रोक नही पाता और इन सबके लिए नारी को दोषी बता देता है।"

रसकपूर की बात से चादसिंह और प्रधानमत्री दोनो ही आवेश मे आ गए और उससे एक के बाद एक तर्क करने लगे।

चादसिंह—"नारी जन्म से ही दम्भी होती है।"

रसकपूर—"नारी जन्म से स्नेहमयी होती है।"

प्रधानमत्री—"नारी पुरुष को दिग्भ्रात कर देती है।"

रसकपूर—"नारी पुरुष को दिशा देती है।"

चादसिंह—"नारी अपने रूप के मायाजाल मे पुरुष को फसाकर अस्तित्वहीन बना देती है।"

रसकपूर—"नारी अपने रूप-सौन्दर्य से पुरुष को पुरुषत्व प्रदान करती है।"

प्रधानमत्री—"नारी कुबुद्धि को जन्म देती है।"

रसकपूर—"नारी विवेक की जननी है।"

चादसिंह—"नारी समस्या है।"

रसकपूर—"नारी समाधान है।"

प्रधानमंत्री—"नारी के कारण अनेक महल ढह गये।"

रसकपूर—"नारी के कारण ताजमहल बन गये।"

चांदसिंह—"नारी उन्माद है।"

रसकपूर—"नारी आह्लाद है।"

प्रधानमंत्री—"नारी जकडन है।"

रसकपूर—"नारी हृदय की धडकन है।"

चांदसिंह—"नारी पहेली है।"

रसकपूर—"नारी सहेली है।"

प्रधानमंत्री—"नारी बला है।"

रसकपूर—"नारी कला है!"

चांदसिंह—"नारी विनाश है।"

रसकपूर—"नारी प्रकाश है।"

दोनो प्रमुख थककर निरुत्तर हो गये।

परन्तु रसकपूर ने अपना तर्क जारी रखा, "आप लोगो का मुझ पर व्यक्त किया जा रहा आक्रोश निरर्थक है। मैं यहा राजप्रासाद मे बसने के लिए नही आयी थी। मैं तो यहा महज नृत्य द्वारा आप लोगो का मनोरंजन करने आयी थी। गुणीजनखाना के मुखिया जयराज के अनुरोध पर ही मैंने यहा आकर अपनी कला का प्रदर्शन किया था। आप लोगो ने भी शरद्-उत्सव की रात मेरी कला की कद्र की थी, पर आप लोगो की कद्र क्षणिक थी। महाराजा विवेकी थे इसलिए इन्होंने मेरी कला की पूर्ण कद्र की।

चांदसिंह ने रसकपूर के इस कथन को बेइज्जती के रूप मे लिया। वह अपना संतुलन खो बैठा। उसका स्वर गुस्से से भर गया, "तुम हमे अविवेकी सिद्ध कर रही हो। वस्तुत: तुम स्वयं अविवेकी हो! बल्कि तुम विवेक शून्य हो! तुम वेश्या हो!"

"खामोश!" महाराजा गरज उठे। उनकी आखो से अंगारे बरसने लगे, "चांदसिंह!

तुमने रसकपूर को अपमानित कर के घोर अपराध किया है। तुम पर दो लाख रुपयों का जुर्माना किया जाता है।"

सजा सुनाकर महाराजा रसकपूर की बांह पकड़कर सभा से उठकर चले गये।

कानाफूसी के साथ सभा विसर्जित हो गयी।

सभा मे जो कुछ हुआ था, उससे रसकपूर खुश नही थी। हालाकि, सामन्त चादसिंह और प्रधानमत्री के हर तर्क का उसने उत्तर दिया था, पर वे अपने पूर्वाग्रहो से इतने ग्रस्त थे कि उनका हृदय रसकपूर नही जीत पायी थी। चादसिंह पर दो लाख रुपयो का जुर्माना किया जाना उसे और अधिक भडका सकता था। रसकपूर ने सारी परिस्थिति पर समुचित विचार करके अपने भावी जीवन की रूप-रेखा निश्चित कर ली।

रसकपूर ने महाराजा की राजकाज मे दिलचस्पी उत्पन्न करने की कोशिश की। वह स्वय भी राजकार्यों मे सक्रिय रूप से भाग लेने लगी। उसने कई-एक मुखियाओ और अधिकारियो को अपने अनुकूल बना लिया।

चादसिंह का गुस्सा शान्त करने के उद्देश्य से रसकपूर ने महाराजा से उस पर किया गया जुर्माना माफ कर देने का आग्रह किया, पर महाराजा नही माने। भरी सभा मे उनकी प्रेयसी को वेश्या कहे जाने की पीडा अब तक महाराजा को सता रही थी। महाराजा ने रसकपूर से साफ-साफ कह दिया कि वे जुर्माना माफ नही करेंगे और भविष्य मे अगर किसी अन्य सामन्त ने ऐसा कहने की धृष्ठता की तो उसकी जागीर जप्त कर लेंगे।

रसकपूर जानती थी, सामन्त चादसिंह क्रोधी स्वभाव का जिद्दी सामन्त है। वह अकेला भी नही है। उसको प्रधानमत्री तथा कुछ अन्य प्रभावशाली सामन्तो का समर्थन भी प्राप्त है। वह कभी भी बवडर खडा कर सकता है।

रमकपूर ने सामन्त चार्दसिह से मिलने का निश्चय किया ।

रसकपूर ने अन्त.पुर की अपनी एक विश्वस्त सेविका को सामन्त चार्दसिह को बुलाने भेजा, परन्तु चार्दसिह ने आने से इन्कार कर दिया।

रसकपूर ने इसे प्रतिष्ठा का प्रश्न नही बनाया और वह स्वय चाद-सिह से मिलने मोती डूगरी किले मे जा पहुची । ज्योही रसकपूर की बग्घी किले के द्वार पर आकर रुकी, द्वारपाल ने अदर जाकर चार्दसिह को सूचित किया । चार्दसिह ने झुझलाते हुए अपने अगरक्षक मे रसकपूर को बाहरी बैठक मे बैठाने के लिए कहा ।

चार्दसिह ने रमकपूर से अकेले मे मिलना उचित नही समझा । उसने तुरत घुडसवार भेजकर प्रधानमत्री को बुलवाया । पर घुडसवार वापस खाली हाथ लौट आया । प्रधानमत्री कुछ आवश्यक मत्रणा करने के मिल-सिले मे उस समय खण्डला गये हुए थे । विवश होकर चार्दसिह को अकेले ही रसकपूर से मिलना पडा । उसने गुमाश्ता भेजकर रमकपूर से पर्दा कर लेने को कहा ।

जब भरी सभा मे उसने कभी पर्दा नही किया तो अब पर्दा करने की क्या तुक थी ! फिर भी महज चार्दसिह की बात रखने के लिए रमकपूर ने एक झीनी चुनरी पलको के नीचे तक बाध ली ।

चोबदार ने चार्दसिह के आने की सूचना दी ।

चार्दसिह द्रुतगति से अन्दर प्रविष्ट हुआ और बिना रसकपूर की ओर देखे धम मे बैठ गया । चार्दसिह के इस गुस्सैल आचरण से रसकपूर मन-ही-मन हस पडी, पर उसने अपने चेहरे पर गम्भीरता बनाये रखी ।

"यदि आज्ञा हो तो मैं कुछ निवेदन करू ?" रसकपूर ने कहा ।

चार्दसिह ने कोई उत्तर नही दिया, वह चुपचाप बैठा रहा ।

रसकपूर ने समय बर्बाद करना उचित नही ममझा, उसने पूर्ण नम्रता के साथ पूछा, "यदि आदरणीय सामन्त चाहे तो जो कुछ मेरे कारण हुआ है, उसका खामियाजा भी स्वय मैं ही भुगतू ? "

"क्या मतलब ?" चार्दसिह ने चौंककर पूछा ।

"यदि आपकी शान मे गुस्ताखी न हो तो महाराजा ने सभा मे जो जुर्माना आप पर किया है, उसे मैं अदा कर दूं ?"

"रस · कपूर ·!" चादसिंह लगभग चीखता हुआ खडा हो गया। उसके दात बज उठे। "तुम अपनी औकात भूल बैठी हो। महाराजा तुम्हारे रूप-सौन्दर्य के जाल मे फस सकते है, दूनी का सामन्त नही! तुमने यहा आकर आज जो मेरा अपमान किया है, मैं उसका बदला लेकर रहूगा।" यह कहकर चादसिंह तेजी से बाहर चला गया।

रसकपूर का डूगरी किले मे आने का प्रयोजन निष्फल हो गया था। वह वापस चन्द्रमहल लौट आई।

रसकपूर मोती डूँगरी गयी तो थी चादसिंह का हृदय-परिवर्तन करने, पर हो उल्टा गया। रसकपूर की बात ने आग मे घी का काम कर दिया था।

इसके बाद तो चादसिंह विभिन्न उपायो से रसकपूर का अपमान करने की तरह-तरह की योजनाए बनाने लगा।

अपने जन्म-दिवस के उपलक्ष मे चादसिंह ने दूनी मे एक भारी जलसे का आयोजन किया। उसने सभी सामन्तो को आमन्त्रित किया। महाराजा जगतसिंह को भी निमन्त्रण भेजा पर साथ मे यह भी कहला भेजा कि वे चाहे तो सभी रानियो के सग दूनी पधारे, परन्तु रसकपूर को साथ मे न लायें।

इस प्रकार चादसिंह ने रसकपूर का अपमान करने की कोशिश तो की पर वह अपने उद्देश्य मे सफल नही हो सका, क्योकि महाराजा ने चादसिंह को कहलवा भेजा-"जहा रसकपूर नही होगी, वहा मैं भी नही हूगा।"

इससे चादसिंह का क्रोध और भडक उठा। अब तो वह रसकपूर के पूर्ण विनाश की योजना बनाने लगा।

मोती डूगरी से लौट आने के बाद रसकपूर चादसिंह की तरफ से और अधिक सतर्कता बरतने लगी। उसने अपने विश्वस्त गुप्तचर चादसिंह के पीछे लगा दिये।

गुप्तचरो ने रमकपूर को सूचना दी कि चादसिह ने विशिष्ट सामन्तो की एक गुप्त बैठक नाहरगढ किले मे की है और वहा रसकपूर को महल मे से निकाल देने पर विचार किया गया है। पूरी सभावना है कि आगामी वसन्तोत्सव के अवमर पर ये सामन्त कुछ गडवड करेंगे।

इधर महाराजा ने वसन्तोत्सव के दिन रसकपूर को चन्द्रमहल मे एक रानी के रूप मे प्रवेश कराकर, उसे वाकायदा जयपुर की रानी घोषित किये जाने का कार्यक्रम वना रखा था। और इसके लिए उन्होंने अपने विश्वस्त सामन्तो का सहयोग भी प्राप्त कर लिया था। प्रधानमत्री तथा सामन्त चादसिह के विरोव की महाराजा ने जरा भी परवाह न की थी।

गुप्तचरो की सूचना सही थी। मामन्त चादसिह ने वसतोत्सव के दिन, एक रानी के रूप मे रमकपूर के चन्द्रमहल मे प्रवेश को रोकने के लिए, कई सामन्तो को तैयार कर लिया था।

चन्द्रमहल को सजाने का कार्य शुरू हो गया।

सामन्त चादसिह ने कुछ सहयोगी सामन्तो के साथ महाराजा से भेंट की और उनसे इस विचार को त्याग देने का अनुरोध किया। राज-माता ने भी इम कार्य को उचित नही समझा और रमकपूर को एक रानी के रूप मे प्रतिष्ठापित न करने के लिए महाराजा पर दवाव डाला। महाराजा ने यह कहकर कि वे उनकी वातो पर विचार करेंगे, सब को विदा कर दिया। परन्तु मन-ही-मन उन्होंने अपनी योजना को मूर्त्तरूप देने का पक्का निश्चय कर लिया था।

उवर रसकपूर ने भी तय कर लिया था कि वह राजमहल मे रहे या न रहे परन्तु सामन्त चादमिह के कहने पर महल कदापि नही छोड़ेगी। उसने सामन्त से लोहा लेने की ठान ली।

रसकपूर ने महाराजा मे मिलकर वमन्तोत्सव की योजना बनायी।

जयपुर शहर के चौराहो, चौपालो और चौपडो पर ढिंढोरची द्वारा ऐलान कराया, "राजराजेन्द्र महाराजाधिराज सवाई जगतसिह जी वहादुर

वसन्तोत्सव के दिन अपनी नयी रानी रसकपूर के साथ महल मे शाही परम्परा के अनुसार विधिवत् प्रवेश करेंगे। राजा और रानी की सवारी का जुलूस जयगढ से चलकर मानिक चौक चौपड से होता हुआ चद्र-महल पहुचेगा। आम आदमी से कहा जाता है कि वह जुलूस मे अवश्य शामिल हो।''

रसकपूर के महल मे विधिवत् प्रवेश किये जाने की सार्वजनिक घोषणा से चादसिंह के अनुयायी सामन्तो मे खलबली मच गयी। उनकी गुप्त मत्रणाए पुन शुरू हो गयी।

पर सामन्तो का एक वर्ग ऐसा भी था जो महाराजा के इस कदम को गलत नही मानता था। उनका कहना था कि राजमहल मे रसकपूर का विधिवत् प्रवेश हो जाने से सब कुछ नियमबद्ध हो जायेगा तथा सब राज-कुल की शान के अनुकूल हो जायेगा। लोग तब यह नही कह पायेंगे कि एक नाचने वाली 'भक्तन' महल मे रह रही है।

चादसिंह के समर्थक सामन्तो का कहना था कि वसन्तोत्सव पर रसकपूर का राजमहल मे विधिवत् प्रवेश हो जाने से वह नियमानुसार पटरानी बन जायेगी, और तब हर व्यक्ति के लिए उसके सामने सिर झुकाना, आदर प्रकट करना, अनिवार्य हो जायेगा। और यह एक राजपूत की शान के खिलाफ होगा कि वह एक 'भक्तन' के आगे सिर झुकाये।

सामन्तो के दोनो खेमो मे रस्साकशी शुरू हो गयी। दोनो वर्ग विभिन्न सरदारो, जागीरदारो एव प्रभावशाली व्यक्तियो को अपने-अपने पक्ष मे करने मे जुट गये। प्रधानमत्री स्पष्टत चादसिंह के वर्ग के साथ थे। चादसिंह के इस गुट को राजमाता की सहानुभूति भी प्राप्त थी।

दूसरे खेमे का नेतृत्व एक वयोवृद्ध परन्तु कूटनीतिज्ञ ब्राह्मण पडित शिवनारायण मिश्र कर रहा था। पडित शिवनारायण मिश्र ने राजभक्त सामन्तो को सगठित कर 'प्रवेश' को सफल बनाने के लिए पैंतरेबाजी शुरू कर दी। इसके लिए महाराजा से उसे सब तरह की सुविधाए प्राप्त थी।

पंडित शिवनारायण मिश्र ने चांदसिंह को कहला भेजा कि अगर वह रसकपूर के राजवंश में प्रवेश का महज इसलिए विरोध कर रहा है कि वह एक 'भक्तन' है, जिसके मां-बाप का पता नहीं तो वह रसकपूर को अपनी बेटी बनाने के लिए तैयार है, और ब्राह्मणत्व प्रदान करने के लिए 'यज्ञ' का आयोजन भी किया जा सकता है।

चांदसिंह ने इस प्रस्ताव को नामंजूर कर दिया। उसने पंडित मिश्र को कहला भेजा कि वह इस 'प्रवेश' को हर सम्भव तरीके से रोकेगा।

अठारह वर्षीय अल्प वयस्क महाराजा, चांदसिंह और उसके समर्थकों द्वारा किये जा रहे विरोध को दबाने में भारी कठिनाई महसूस कर रहे थे। चांदसिंह की पैंतरेबाजी का वे शिकार होते गये और इस वर्ग द्वारा उद्वेलित किये जा रहे जनमानस को वे अपने अनुकूल नहीं बना पाये। फिर भी वे निश्चय पर अडिग रहे।

गुप्तचरों द्वारा विभिन्न वर्गों एवं नगर की जनता की प्रतिकूल प्रतिक्रिया की सूचनाओं के बावजूद महाराजा जगतसिंह ने अपने निश्चय की क्रियान्विति के लिए तैयारी शुरू कर दी। वे रसकपूर को राजमहल में स्थापित करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ दिखायी दे रहे थे।

निश्चित दिवस पर, कड़ी सुरक्षा के अन्दर, जयगढ़ से रसकपूर के साथ महाराजा जगतसिंह की सवारी निकली।

सामन्तों के एक वर्ग के विरोध के बावजूद जुलूस पूरी भव्यता के साथ निकला। जुलूस में सबसे आगे ढोल और बिगुल बजाने वाले चल रहे थे। उनके पीछे रंग-बिरंगे परिधानों में भक्तनें नृत्य कर रही थीं। घूमर नृत्य के समय नृत्यांगनाओं की लम्बी केशवर्तिकाएं हवा में झूल जाती थीं। उनके उत्तरीय बार-बार हवा में लहरा जाते थे, जिन्हें वे तेजी से पकड़तीं और अपनी कमर में खोंस लेतीं। नृत्यांगनाओं के पीछे वाली बैलगाड़ी पर नगाड़ा बज रहा था। नगाड़े के पीछे शहनाईवादक थे और उनके बाद एक सहस्र पैदल सैनिक चल रहे थे। इनके पीछे राजचिह्न लिये हुए पांच पहरी चल रहे थे। राजचिह्न के पीछे घुड़सवार सेना का एक दस्ता

था। घुडसवार सेना के पीछे एक विशाल रथ पर रसकपूर के परिधान, आभूषण, शृंगार-सामग्री (जो सामान्यत दहेज मे आती है) रखी हुई थी। रथ के पीछे दस सामन्त हाथो मे नगी तलवारे लिये हाथियो पर सवार थे। इनके पीछे कलात्मक ढग से सजाये गये रथ पर महाराजा जगतसिंह और रसकपूर विराज रहे थे। महाराजा जगतसिंह ने नीली अचकन पर गुलाबी साफा बाधा हुआ था। रसकपूर ने गुलाबी वस्त्र पहने हुए थे जिन पर नीला उत्तरीय हवा के झोको से बार-बार फडफडा जाता था।

महाराजा के रथ के पीछे पन्द्रह हाथी, बीस ऊट तथा अन्त मे पुन. घुडसवार सेना की एक टुकडी थी।

विरोध और समर्थन के तनावपूर्ण वातावरण मे निकले इस जुलूस को देखने के लिए राजमार्ग के दोनो ओर काफी सख्या मे लोग खडे थे। दर्शको के चेहरो पर कौतूहल और रसकपूर को देखने की उत्कण्ठा के मिश्रित भाव थे।

जोरावरसिंह द्वार से होता हुआ जुलूस जब चादी की टकसाल के पास पहुचा, एक गुप्तचर ने महाराजा को इशारा कर कुछ कहना चाहा। महाराजा ने रथ रुकवाकर गुप्तचर की सूचना सुनी। सूचना सुनकर वे किंचित् चिंतित हो उठे। गुप्तचर की सूचना से अब तक मुस्करा कर जनता का अभिवादन स्वीकार कर रही रसकपूर भी गभीर हो गयी। महाराजा ने अगरक्षको एव सेना के प्रधान को बुलाकर कुछ निर्देश दिये।

जैसी कि गुप्तचर ने महाराजा को सूचना दी थी, सिटी ड्योढी दर-वाजे पर सामन्त चादसिंह का दल तलवारे ताने खडा था।

जुलूस सिटी ड्योढी पर आकर रुक गया। ढोल वजने बन्द हो गये। नृत्य रुक गया। एक गहरी निस्तब्धता जुलूस के प्रारम्भ से अन्त तक छा गयी।

एक सामन्त महाराजा के रथ के पास आया। उसने तलवार झुका-कर कोर्निश की और फिर अपने दल का सदेश सुनाया, "अन्नदाता! राज

राजेन्द्र ! हम सब सामन्त आपका पूरा आदर करते हैं और करते रहेंगे। हम आपके प्रति वफादार हैं, और रहेंगे। पर अन्नदाता ! हम रसकपूर को एक रानी का सम्मान देने मे असमर्थ हैं। हम रसकपूर की सवारी को राजमहल मे प्रविष्ट नही होने देंगे। हम अपना खून बहा देंगे पर अपने निश्चय से नही डिगेंगे !" सामन्त बिना महाराजा का उत्तर सुने, अपनी बात कहकर, अपने खेमे में लौट गया।

महाराजा जगतसिंह गुस्से से भर उठे। उन्होंने तत्काल सेना-प्रधान को बुलाया।

सेना-प्रधान ने आकर महाराजा को बताया कि सामन्तो का सामना करने के लिए सेना तैयार खडी है, सिर्फ महाराजा के आदेश का इतजार है।

महाराजा का हाथ तलवार की मूठ-पर जा चुका था। वे उठकर खड़े होने वाले थे कि रसकपूर ने उनकी बाह पकडकर रोक लिया। "राजन् ! क्या फूलो से लदा सुवासित हुआ यह राजमार्ग अब राजपूतो के खून से सनेगा ? क्या एक स्त्री की खातिर ऐसे पराक्रमी, वीर योद्धाओ को जिन्हे दुश्मनो के बलमर्दन के लिए तैयार किया गया है, आपस मे ही लड-मर जाना चाहिए ? मैं राजमार्ग पर उनके खून का एक भी कतरा गिरने के पूर्व अपना प्राणान्त कर देना उचित समझूगी !"

यह सुनकर महाराजा के माथे पर बल पड गये, उन्होंने पूछा, "फिर ?"

"लौट चलिये !"

प्रतिष्ठा का सवाल था। महाराजा ने रसकपूर के प्रस्ताव को नामजूर कर दिया। उन्होंने मत्रणा के लिए पडित शिवनारायण मिश्र को बुलवाया।

पडित शिवनारायण मिश्र ने महाराज को एक युक्ति सुझायी। इस युक्ति के अनुसार राजभक्त सामन्तो को चादसिंह के सामन्तो के साथ तर्क-वितर्क मे उलझा दिया गया। दोनो पक्ष एक-दूसरे को समझाने मे लग गये। यह प्रक्रिया चल ही रही थी कि महाराजा का रथ गोविंददेवजी के मदिर की तरफ वाले पिछवाडे द्वार की ओर मोड दिया गया

और वही से रसकपूर का राजमहल मे प्रवेश करा दिया गया।

रसकपूर के विधिवत् प्रवेश हो जाने के वाद राजमहल के शिखर पर फहरा रहे राजध्वज के नीचे रसकपूर के 'रानी सूचक' ध्वज को फहरा दिया गया और विगुल वजा दिया गया।

ध्वज को देखकर चादसिह-वर्ग के सामन्त हक्के-वक्के रह गये और पडित शिवनारायण मिश्र को 'धूर्त, कपटी, नीच' कहते हुए, तलवारो को म्यानो मे रखते हुए लौट गये।

चादसिह के व्यवहार से महाराजा वहुत क्रोधित थे। वे चादसिह को कडा सवक सिखाना चाहते थे। परन्तु रसकपूर और महाराजा के अन्य राजनीतिक सलाहकारो ने उन्हे ऐसा करने से रोक दिया। अभी चादसिह को छेडने का समय नही था। जयपुर रियासत पर वाहरी आक्रमणो के खतरे के वादल मडरा रहे थे। महाराजा जगतसिह गुस्सा पीकर रह गये। लेकिन उन्होने प्रधानमत्री को तत्काल वर्खास्त कर दिया और उनके स्थान पर पडित शिवनारायण मिश्र को प्रधानमत्री नियुक्त कर दिया।

पडित शिवनारायण मिश्र ने प्रधानमत्री का पद सम्भालने के साथ ही महाराजा को 'रसकपूर प्रकरण' सदैव के लिए समाप्त कर देने की राय दी। रसकपूर का राजमहल मे विधिवत् प्रवेश तो हो ही चुका था परन्तु उसे स्थायी करने के लिये कुछ कदम उठाये जाने अभी शेप थे। इसके लिए पडित शिवनारायण मिश्र ने महाराजा को रसकपूर के नाम का सिक्का चलाने की राय दी। महाराजा ने इस राय पर तुरन्त अमल किया और टकसाल के मुखिया को वुलाकर रसकपूर के नाम का सिक्का ढालने का आदेश दे दिया।

राजमहल मे प्रवेश पा लेने के वाद रसकपूर बहुत सजीदगी से सारे काम करने लगी। उसने राजकर्मचारियो को अपने पक्ष मे करना और पडित शिवनारायण मिश्र को राजकाज मे सहयोग देना शुरू कर दिया।

थोडे ही समय मे वह राजकर्मचारियो और प्रशासन पर हावी हो गयी।

महाराजा की अनिच्छा की वजह से राजकाज के प्रति हो रही उपेक्षा को रसकपूर की सक्रियता ने काफी हद तक कम कर दिया और कुछ समय से प्रशासन मे आ गयी उच्छृखलता भी अव धीरे-धीरे कम होने लगी।

रमकपूर ने स्वय अपनी और राजमहल मे रहने वाले लगभग मभी व्यक्तियो की दिनचर्या को नियमित कर दिया।

प्रात काल, भोर मे, राजमहल भजनो की सुरीली आवाज से गूज उठता। रसकपूर स्वय तानपूरा लेकर भजन गाती। उसकी आवाज मुनकर महाराजा जगतसिह जाग जाते और करवटे वदलकर रात की खुमारी को दूर भगाने का प्रयाम करते।

मारा राजमहल नियमित हो गया था, पर महाराजा का प्रमाद ज्यो-का-त्यो वना हुआ था।

हर सुवह एक घटे के पूजन के वाद रमकपूर अपने हाथ से चरणामृत लाकर अलसा रहे महाराजा को पिलाती और उन्हे पीठ से सहारा देकर पलग से उठा देती। मोतियो की मालाओ की छन्-छन् के वीच महाराजा रसकपूर की वाह पकड लेते और कहते, "आज तो तुम्हारी आवाज और भी मधुर लग रही थी।" महाराजा तव अपने ओठ उसकी गर्दन पर जाकर टिका देते और कहते, "कितना रस छिपा हुआ है यहा!"

रसकपूर महाराजा को हल्के से झिडक देती, "आपका तो खुमार उतरता ही नही। सुवह-मुवह भगवान का नाम लिया कीजिये। इससे हम दोनो का और जयपुर रियासत की जनता का भी लाभ होगा।"

"ले लूगा! भगवान का नाम भी ले लूगा! पहले इस भगवान की अराधना तो पूरी हो जाये।" महाराजा रसकपूर को आलिगनवद्ध कर लेते। वह कसमसाकर रह जाती।

सदा की भाति प्रात जव रमकपूर भजनोपरात चरणामृत लेकर महाराजा के यहा जा रही थी तो द्वार के वाहर गुप्तचर विभाग के

मुखिया को उसने खडे देखा। अवश्य कोई खास बात होगी! रसकपूर किसी भावी शका से ग्रस्त हो गयी।

"आप सुबह-सुबह यहा ?" रसकपूर ने गुप्तचर विभाग के मुखिया से पूछा।

मुखिया ने रसकपूर को अदब जताया और बताया कि एक बहुत ही गभीर समस्या आ पडी है। रात मे उन्हे सूचना मिली है कि जोधपुर की विशाल सेना जयपुर पर आक्रमण करने के उद्देश्य से कूच कर चुकी है।

वात वास्तव मे वहुत गम्भीर थी। तुरन्त रसकपूर गुप्तचर विभाग के मुखिया को अपने साथ अदर ले गयी।

सदैव की तरह आज भी महाराजा ने पायल की रुन-झुन की आवाज सुनकर उचककर रसकपूर का अभिवादन किया। परन्तु रसकपूर के पीछे गुप्तचर विभाग के मुखिया को देखकर क्षोभ का एक हल्का-सा भाव उनके चेहरे पर तैर गया।

"तुम कैसे अदर आ गये ?"

"इन्हे मैं अपने साथ लायी हू।"

"क्यो प्रिये ? ऐसा क्यो ? आज 'प्रथम-दर्शन' मे यह व्यवधान क्यो ?"

"इन्हे आपको एक वहुत जरूरी सूचना देनी है!"

"ऐसी कौन-सी जरूरी सूचना है, जिसे हम दिन मे नही सुन सकते थे ?"

मुखिया ने महाराजा के प्रति अदब जताया और कहा, "अन्नदाता! रात मे जोधपुर के गुप्तचरो की सूचना आयी है कि जोधपुर की विशाल सेना जयपुर पर आक्रमण करने के लिए कूच कर चुकी है। मैंने हुजूर को रात मे जगाना उचित नही समझा!"

यह सुनकर महाराजा गभीर हो गये।

गुप्तचर विभाग के मुखिया ने प्राप्त सारी सूचनाए तब विस्तार से महाराजा को सुनायी।

जोधपुर के महराजा मानसिह ने, उदयपुर की अद्वितीय सौन्दर्य के

लिए विख्यात राजकुमारी कृष्णाकुमारी पर, यह कहकर अपना हक जताया था कि राजकुमारी कृष्णाकुमारी की पहली सगाई उसके भाई के साथ हुई थी। अब यदि शादी के पूर्व उसका भाई स्वर्गवासी हो गया है तो राजकुमारी का रिश्ता उसके साथ किया जाना चाहिए। परन्तु उदयपुर के महाराजा को यह रिश्ता स्पष्टत: नामजूर था। वह अपनी बेटी को जयपुर के युवा महाराजा जगतसिंह के साथ ही ब्याहना चाहते थे।

जोधपुर के महाराजा को जयपुर पर आक्रमण करने के लिए उनकी अपनी रियासत के ही एक प्रभावशाली सामन्त पोकरण के ठाकुर सवाईसिंह ने उकसाया था। पोकरण का ठाकुर अपनी बेटी का ब्याह जयपुर के महाराजा जगतसिंह से 'डोला' पद्धति से करना चाहता था, यह जोधपुर के महाराजा मानसिंह को स्वीकार नही था। जोधपुर के महाराजा का कहना था कि राठौरो की बेटी जयपुर तभी जा सकेगी जब जयपुर-नरेश स्वय जोधपुर आकर उसे ब्याह कर ले जायेंगे। चूकि ऐसा नही हो रहा था, अत जोधपुर के महाराजा ने सवाईसिंह को अपनी बेटी की शादी के लिए स्वीकृति नही दी थी। परन्तु पोकरण का ठाकुर सवाईसिंह अपनी बेटी को जयपुर-नरेश से ब्याहने के लिए अत्यधिक लालायित था। और जैसे भी हो वह अपनी बेटी को जयपुर के राजमहल मे प्रवेश कराकर अपना रिश्ता जयपुर मे जोडना चाहता था। उसने जोधपुर के महाराजा के विरुद्ध षड्यत्र रचना शुरू कर दिया। उसने एक ओर तो धोकलसिंह को गुमराह कर जोधपुर का महाराजा बनने के लिए विद्रोह करने को उकसाया और दूसरी ओर महाराजा मानसिंह का मानसिक सतुलन बिगाडने के उद्देश्य से जोधपुर मे यह प्रचार शुरू कर दिया कि जोधपुर महाराजा की पौरुषहीनता के कारण उदयपुर की राजकुमारी जोधपुर आने के बजाय जयपुर जा रही है।

पोकरण का ठाकुर अपनी चाल मे सफल हो गया था। और जोधपुर का महाराजा अपने पौरुष का प्रदर्शन करने लिए सेना लेकर

जयपुर की ओर चल पडा था ।

गुप्तचर विभाग के मुखिया की सूचनाए गभीर और चिंताजनक थी । महाराजा ने हाथ से इशारा कर मुखिया को जाने के लिए कहा । मुखिया चला गया । महाराजा ने रसकपूर से चरणामृत लेते हुए कहा, "यह सही मौका है, चादसिह से बदला का ! मैं उसे जोधपुर की सेना से युद्ध के लिए भेज देता हू ।"

"और यदि चादसिह ने उल्टा आपसे ही बदला ले लिया तो ?"

"वह कैसे ?"

"जोधपुर के महाराजा से हाथ मिलाकर ! युद्ध के लिए किसी बागी सरदार को भेजना भयकर भूल सिद्ध हो सकती है !"

"फिर किसे भेजा जाए · ?" महाराजा सोचने लगे ।

"किसे भेजा जाय ? क्या स्वय आप युद्ध मे नही जायेंगे ?"

"यह तुम कह रही हो प्रिये ? तुम मुझे युद्ध मे भेजना चाहती हो ? क्या तुम मुझसे उकता गई हो ? मुझे जानबूझकर खतरे मे धकेल रही हो ? क्या तुम एकान्त चाहती हो ?"

रसकपूर ने महाराजा का हाथ चूम लिया, "नही, राजन् ! मैं एक पल भी आपको देखे बिना जी पाऊगी, यह सदिग्ध है । क्षणभर का भी आपका विछोह मुझे असीम वेदना देगा । पर राजन्, यह तो और भी अधिक कष्टदायक होगा जब हमारी सेना जोधपुर के हाथो परास्त हो जायेगी और मुझे प्रात काल किसी खिन्न चेहरे को चरणामृत देना पडेगा ।"

"तुम ऐसा क्यो सोचती हो, प्रिये ! हमारी सेना परास्त नही होगी । हमारे पास अनेक युद्ध-प्रवीण योद्धा हैं ! तुम उनके पराक्रम से अभी परीचित नही हो । ये योद्धा हारकर नही बल्कि जीतकर ही लौटेंगे ! हमे ईश्वर ने जो सुख-उल्लास के दिन दिखाये हैं, उसमे विघ्न नही पडेगा । तुम्हारी ये बाहे सदैव मेरे गले का हार बनकर रहेगी !" कहकर महाराजा ने रसकपूर को खीचकर आलिगनबद्ध कर लिया ।

सिर पर युद्ध के बादल मडरा रहे थे, और महाराजा अभी तक प्यार के नशे मे डूबे हुए थे। रसकपूर को यह बिलकुल अच्छा नही लगा। उसने आतरिक तिरस्कार की भावना से प्रेरित होकर अपने को महाराजा के बाहुपाश मे मुक्त कर लिया।

महाराजा जगतसिह अवाक् हो रसकपूर को देखते रहे।

"राजन्! यह समय प्रेमालाप का नही है। यह युद्ध का समय है! अब आप भूल जाइये कि कोई रसकपूर इस महल मे रहती है। उठिये और जाकर युद्ध की तैयारिया कीजिये!"

"यह कैसे सभव है, प्रिये! मैं रसकपूर का विस्मरण कैसे कर सकता हू! मेरे लिए यह एकदम असभव है! रसकपूर मेरे रोम-रोम मे समा चुकी है। फिर यह युद्ध हो क्यो रहा है? सिर्फ एक राजकुमारी के लिए ही न? मैं राजकुमारी कृष्णाकुमारी पर अपना हक छोड दूगा। युद्ध होगा ही नही! भला तुम्हे पाने के बाद अब इस महल मे किसी दूसरी स्त्री के आने की जरूरत ही क्या रह गई है?"

"क्या कहा? तुम कृष्णाकुमारी को छोड दोगे? अपने ब्याह के नित नये सपने देखने वाली उस बेकसूर बाला का दिल तोड दोगे? तुम उसे रुला दोगे? उस कोमलागी को एक प्रौढ दानव के लिए बलि चढा दोगे? मुझे मालूम नही था, तुम इतने निष्ठुर और स्वार्थी हो!"

"पर रसकपूर! यह सब तो मैं तुम्हारे लिए ही कर रहा हू! तुम्हारे सान्निध्य से मैंने यही तो सीखा है। इस दुनिया मे प्रेम ही सब कुछ है! और युद्ध प्रेम का शत्रु है। मैं युद्ध नही करूगा!"

"युद्ध नही करोगे? क्या तुम उस अनुपम सुन्दर राजकुमारी को खो दोगे? क्या तुम अब सौन्दर्य के उपासक नही रहे? राजन्! अब मुझे तुम पर विश्वास नही रहा! जो आज युद्ध से भय खाकर अपनी मगेतर को छोड सकता है, वह एक दिन मुझे भी छोड दे सकता है! असल मे तुम युद्ध से भयग्रस्त हो! प्रेम तो एक बहाना मात्र है!"

"नही! बिल्कुल नही! मैं युद्ध से नही डरता हू। पर मैं उस युद्ध को

अनिवार्यता स्वीकार नही करता हू। यह युद्ध निरर्थक है ! मेरी पूर्णता कृष्णाकुमारी को पाने मे नही है ”

“तब क्या रसकपूर को भोगने मे है ?” रसकपूर महाराजा के दुर्बल हृदय से दुखी होकर आवेश मे आ गयी, “राजन् ! छोड दो मुझे ! मैं तो तुम्हारे शौर्य पर आसक्त होकर यहा आयी थी। मैं कछवाहा राजपूत के पराक्रम पर मुग्ध हुई थी। राजमहल मे सुख भोगने के लिए मैं नही आयी। मैं तो उस राजपूती पताका को और ऊचा फहराने आयी थी, जिसे तुम्हारे पूर्वजो ने अपना खून बहाकर अभी तक फहराये रखा है। मुझे क्या मालूम था, इतना बडा महाराजा ! इतना विवेकी ! इतना कुशल राजनीतिज्ञ ! एक साधारण अकुलीन नारी को पाकर अपने कर्त्तव्यो को भूलकर तुच्छता को प्राप्त हो जायेगा ! कहा गया वह तुम्हारे पूर्वजो का विरासत मे तुम्हे मिला हुआ शौर्य ? कहा है वह खानदानी राजपूती स्वाभिमान ? जोधपुर के महाराजा की दु चेष्टा की खबर सुनकर तुम्हारा खून क्यो नही खौल उठा ? तुम्हारी भुजाए क्यो नही फडक उठी ? अभी तक तुम्हारा हाथ म्यान पर क्यो नही चला गया ? मैं कहती हू, तुम्हारा शौर्य लुप्त हो चुका है ! तुम्हारी बाहो मे अब तलवार उठाने का बल नही रहा ! तुम एक निर्बल पुरुष हो ! तुम कायर और पौरुषहीन हो ! तुम ”

“रसकपूर !” महाराजा चीख उठे।

वे तेजी से बाहर निकल आये।

“अरे ! कोई है ?” आवेश से महाराजा का सारा शरीर काप रहा था।

चार सेवक उपस्थित हो गये।

“प्रधानमत्री तथा सेनापति को तुरन्त बुलाओ, कहना हम उनसे विशेष मत्रणा करना चाहते है !”

महाराजा ने दीवाने खास मे प्रधानमत्री, सेनापति तथा जयपुर रिया-

सत के समस्त सामन्त-सरदारो को भी बुला लिया और उन्हे सारी स्थिति से अवगत कराया। सभी ने जोधपुर के महाराजा के इस कृत्य की घोर भर्त्सना की। उपस्थित सरदारो ने, जिनमे दूनी का सामन्त चादसिंह भी सम्मलित था, महाराजा के प्रति पूर्ण वफादारी व्यक्त की और प्रण किया कि उदयपुर की राजकुमारी को जयपुर लाकर ही वे तलवारो को म्यान मे डालेंगे।

सरदारो को अपने-अपने ठिकाने मे जाकर युद्ध की तैयारी करने का आदेश देकर महाराजा ने उन्हें रवाना किया और स्वय प्रधानमन्त्री तथा सेना-प्रमुखो के साथ विचार-विमर्श मे जुट गये।

गुप्तचरो की सूचना थी कि जोधपुर के पास राठौरो की विशाल सेना है। सेना सुसगठित और महाराजा के प्रति पूर्ण आस्थावान है। सख्या की दृष्टि से भी जोधपुर की सेना जयपुर की सेना से कही अधिक है। जोधपुर की सेना मे कई नामी सिद्धहस्त तोपची भी शामिल हैं।

गुप्तचरो की इन सूचनाओ से प्रधानमन्त्री को जयपुर की सेना की सफलता सदिग्ध नजर आने लगी।

सेना की सख्या किलो की सुरक्षा के लिए तैनात डीलो को उतार कर बढायी जा सकती थी। महाराजा के आधीन तैंतीस किले थे जिनमे रण-थम्भौर का प्रसिद्ध किला भी सम्मिलित था। किलो मे लगभग छ हजार डील थे। महाराजा चार हजार डीलो (किले की सुरक्षा के लिए विशेषरूप से दक्ष सैनिक) को नीचे उतारना चाहते थे, पर रसकपूर ने उन्हे ऐसा न करने की सलाह दी। जयपुर को बिल्कुल असुरक्षित छोड दिया जाना खतरे से खाली न था। मौके का फायदा उठाकर पूर्व की तरफ से जयपुर पर आक्रमण होने का पूरा खतरा था। यह बात कालान्तर मे सही सिद्ध हुई। जब जयपुर-जोधपुर युद्ध चल रहा था, कुचामन का ठाकुर जोधपुर की एक सेना-टुकडी के साथ जयपुर पर चढ आया था। उस वक्त रसकपूर द्वारा रोके गये डीलो ने ही बडी बहादुरी के साथ जयपुर की रक्षा की थी।

पिंडारी के नेतृत्व मे मराठो की सेना जयपुर की सेना से आ मिली।

युद्ध की पूरी तैयारी के बाद युद्धघोष का बिगुल बजा दिया गया। आमेर महल मे सिलादेवी की आराधना के बाद महाराजा जगतसिंह ने स्वय घोडे की रास थामी और माँ देवी की 'जय-जयकार' की गूंज के साथ घोडे को एड लगा दी। हिनहिनाकर घोडा हवा से बातें करने लगा।

विभिन्न शस्त्रो से लैस कछवाहा राजपूतो की सेना राजमार्ग से जयपुर शहर को चीरती हुई सागानेरी द्वार से निकलकर जोधपुर के लिए रवाना हो गयी। घोडो की टापो से सारा शहर गूज उठा। धूल के गुब्बारे से शहर के आकाश मे अधेरा छा गया।

माओ ने अपने बेटो, बहिनो ने अपने भाईयो और वीरागनाओ ने अपने पतियो की जीत के लिए मगल-गीत गाये।

जयपुर की ओर चली जा रही जोधपुर की सेना को जयपुर की सेना ने गिंगोली मे रोक दिया। महाराजा जगतसिंह ने जोधपुर के महाराजा मानसिंह को ललकारा। भयकर युद्ध छिड गया। राठौरो और कछवाहा राजपूतो की तलवारें एक-दूसरे के खून की प्यासी हो उठी। देखते ही देखते लाशो का अम्बार लग गया। सारा मैदान खून से सन गया।

अमीरखा पिंडारी की अध्यक्षता मे मराठा-सेना का साथ जयपुर की सेना के लिए वरदान साबित हुआ। राजकुमारी कृष्णाकुमारी को विजित करने आयी जोधपुर की सेना बुरी तरह पराजित होकर भाग खडी हुई।

विजय की खुशी मे जयपुर की सेना के सैनिक झूम उठे।

युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय रसकपूर का कहा हुआ वाक्य एकाएक महाराजा जगतसिंह को स्मरण हो आया। रसकपूर ने कहा था—'दुश्मन को कभी अधमरा मत छोडना। दुश्मन की शक्ति इस तरह क्षीण कर देना कि वह दुबारा युद्ध का नाम ही न ले। दुश्मन को अधमरा छोड देने की गलती से अनेक सल्तनतो को बाद मे भारी पछतावा उठाना पडा है।' महाराजा ने जोधपुर की भागती सेना का पीछा किया और जाकर

सीधा जोधपुर शहर को घेर लिया।

जयपुर की सेना द्वारा जोधपुर शहर का घेराव किये जाने से महाराजा मार्नासिह घबरा उठा। उसने एक कुटिल चाल चली। तीस हजार रुपयो से अमीरखा पिडारी को खरीदकर जोधपुर के महाराजा ने उसे अपने पक्ष मे कर लिया। अमीरखा पिडारी की सेना घेरा छोडकर विलग हो गयी।

अव जोधपुर के महाराजा मार्नासिह ने जयपुर की सेना का घेरा तोडने का दूसरा ही उपाय किया। उसने अपने कुछ विश्वस्त सामन्तो को अमीरखा पिडारी की सेना के साथ जयपुर पर जाकर हमला करने के लिए भेज दिया। रास्ते मे कुचामन का योद्धा सामन्त शिवनार्थासिह भी इनके साथ मिल गया।

रात के समय जयपुर राज्य की मीमा का इस सेना ने अतिक्रमण किया। परन्तु रसकपूर की राय पर किलो मे छोडे गये डीलो ने अद्भुत शार्य का प्रदर्शन करके इन्हे जयपुर शहर में घुमने से रोके रखा।

रसकपूर ने जयपुर पर आक्रमण होने की सूचना तुरन्त महाराजा जगर्तासिह को जोधपुर भिजवा दी। विवश होकर महाराजा को जोधपुर शहर का घेरा छोडकर जयपुर के लिए रवाना होना पड़ गया।

महाराजा जगर्तासिह के जयपुर लौटने की खवर सुनते ही जोधपुर से आयी सेना की टुकडी भाग खडी हुई।

विजयी सेना का जयपुर लौटने पर हार्दिक अभिनन्दन हुआ। महलो के प्राचीर से बिगुल वजाये गये। घर लौट आये योद्धाओ की माओ-बहिनो ने आरती उतारी।

पूरे एक सप्ताह तक जीत की खुशी मनायी गयी। जशन किये गये। महफिलो का आयोजन किया गया।

जीत की खुशी मे रसकपूर फूली नही समा रही थी। वह राजराजेश्वर मन्दिर से वाहर आ गयी, जिसमे महाराजा जगर्तासिह ने युद्ध पर जाने के वाद उनकी मगल-कामना के लिये उसने स्थायी निवास वना लिया

था। महाराजा के लौट आने की खबर सुनते ही वह 'जय-जयकार' करती हुए त्रिपोलिया पर आकर खडी हो गयी। महाराजा जगतसिंह ने घोडे से उतरकर सबसे पहले रसकपूर के पास जाकर उसका अभिवादन स्वीकार कर कुशल-क्षेम पूछा। नीली आखो से बहते दो आसुओ ने बडी-बडी पलको के कोर गीले करते हुए विरह की वेदना व्यक्त की। महाराजा ने देखा, इन छ महीनो मे रसकपूर ने अपनी 'श्री' को काफी हद तक खो दिया है। वे उभरे हुए गाल जिनका उन्होने जाते समय प्यार से स्पर्श किया था, भीतर धस गये हैं। वे उभरी हुई आखो की शखाकार बडी-बडी पुतलिया जिन्होने उसे जयगढ किले से हसते हुए विदा किया था, धसकर निस्तेज पड चुकी है। गुलाब-सी पखुडियानुमा पतले-पतले ओठ मुरझा कर हतप्रभ हो गये है, उन पर सिलवटें पड गयी हैं। रसकपूर के सौन्दर्य-ह्रास को देखकर महाराजा अत्यन्त दु खी हो उठे। उनके मुह से बस इतना ही प्रस्फुटित हो सका—र स क पू र !

"चलिये राजन्! महल मे चलिये।" अपने हाथ से फूलो से भरे थाल मे से हसते हुए फूल बिखेरती हुई रसकपूर महाराजा के लिये मार्ग बनाने लगी।

महाराजा के महल मे पहुचने पर अन्य रानियो ने भी उनका स्वागत किया। उनके युद्ध-शस्त्रो को उतारा और उन्हे सहज वस्त्र धारण कराये।

जयराज ने महाराजा की थकावट उतारने के उद्देश्य से शाम को एक भव्य महफिल का आयोजन किया। परन्तु महाराजा ने महफिल स्थगित करवा दी। आज की शाम वे रसकपूर के साथ ही बिताना चाहते थे।

सध्या को आरती से निवृत्त हो रसकपूर सीधे प्रियतमनिवास पहुची, जहा महाराजा जगतसिंह बडी बेसब्री से उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

रसकपूर ने देखा, मदिरा की सुराही वैसे की वैसे ही ढकी पडी है। गिलास भी औंधे रखे हुए हैं। महाराज ने अभी तक मदिरा-पान शुरू नही किया था।

"क्या वात है राजन्! अभी तक आपने प्याला अपने ओठो से नही लगाया ?"

"यह प्याला तुम्हारे स्पर्श का इंतजार कर रहा है, रस!"

रसकपूर मुस्करा पडी। उसने महाराजा के सिर पर फूलो की कुछ पखुडिया, जो वह मन्दिर से साथ ही ले आयी थी, फेंकी। फिर हाथ जोडकर उसने आखें वन्द की और भगवान से महाराजा तथा प्रजा की मगल-कामना करने लगी। महाराजा ने विस्तर पर आ पडी फूल की पखुडी को उठाकर अपने माथे से लगाया और अज्ञात शक्ति को श्रद्धा से नमन किया। महाराजा ने रसकपूर के जुडे हुए हाथो को पकडकर उसका ध्यान भग किया। रसकपूर मुस्करा कर महाराजा की वगल मे वैठ गयी। उसने चादी की तश्तरी मे रखे चादी के प्याले को सीधा किया और उसमे सोने की सुराही से मदिरा उडेल दी। पहला प्याला उसने महाराजा जगतसिंह के ओठो से लगा दिया। महाराजा ने एक ही घूट मे गट-गट कर प्याला खाली कर दिया। रसकपूर को यह उतावलापन अच्छा नही लगा। उसने दुवारा प्याला भरा और महाराजा के हाथ मे थमाते हुए वोली, "धीरे-धीरे, राजन्! अभी तो रात शुरू भी नही हुई है।"

महाराजा ने रसकपूर की ठोडी को उठाते हुए कहा, "तुम्हारी पलको मे काजल लगते ही रात हो जाती है! फिर मदिरा का सम्वन्ध रात से नही, व्यक्ति के जजवातो से होता है। तुम्हारे सान्निध्य मात्र से मेरे जजवात उछाला खा जाते हैं।" थोडा रुक कर महाराजा वोले, "यह मदिरा तो मैं उस मदिरा को पीने के लिए शक्ति-सचय हेतु पीता हू, जिसे अभी मुझे पीना है!"

रसकपूर कुछ विस्मय मे आ गयी, "ऐसी कौन-सी मदिरा है जो इस मदिरा के वाद पीनी है, राजन्?"

"वह जो तुम अपनी आखो से पिलाती हो!"

महाराजा रसकपूर की आखो मे झाके जा रहे थे, रसकपूर ने शर्माते

हुए पलकें गिरा दी। वह मद-मद मुस्कराती हुई बोली, "क्या सचमुच मेरी आखें इतनी नशीली हैं ?"

महाराजा ने इसका कोई उत्तर नही दिया। उनके ओठ रसकपूर की पलको के साथ जा लगे।

महाराजा जगतसिंह को सुरापन करते हुए दो घण्टो से भी अधिक हो चुके थे। रसकपूर ने महाराजा के ओठो पर अपना हाथ रख दिया और बोली, "अब बस कीजिये, राजन् ! आज आपने बहुत पी ली है !"

महाराजा ने रसकपूर की शखाकार बडी-बडी नीली आखो मे झाक कर देखा, सुरापन से आखें लाल अगूरी हो रही थी । उन्हे वहा एक बहुत बडे कलाकार का छलक रहा अभिमान दिखाई दिया। उसके गुलाब की पखुडियानुमा पतले ओठ कुछ शुष्क हो उठे थे, जो उसके शरीर की ऊष्मा को दर्शा रहे थे। नशीली आखें लाल अगूरी होकर और भी फैल गयी थी। ऊष्मित वक्ष तेजी से नीचे-ऊपर उठ-गिर रहे थे। हाथ की उगलिया सितार के तार की तरह काप रही थी। आचल कब का वक्षो से ढल कर महाराजा की गोद मे गिर गया था। महाराजा ने गोद मे पडी चुनरी को उठाकर रसकपूर के ओठ के नीचे ठोडी पर टिकी हुई दो मदिरा-बूदो को पोछ दिया। रसकपूर समझ गयी, अब महाराजा की बाहे उसकी ओर बढेंगी। वह शर्मा कर अपने मे सिमट गयी। कुछ क्षण और व्यतीत हो गये। महाराजा के हाथ रसकपूर की ओर नही बढे। रसकपूर ने धीरे से पलकें उठाकर महाराजा की ओर देखा। वे तिपाई पर पडे घुघरुओ की ओर देख रहे थे।

"पूरे छ महीने हो गये हैं, इन घुघरुओ को बजते हुए देखे, रस ! आज हमे अपना नृत्य नही दिखाओगी ?"

"अवश्य राजन् !"

रसकपूर उठकर तिपाई की तरफ बढी। दो कदम चलकर ही वह लडखडा कर मुह के बल गिर पडी। रसकपूर खिलखिला कर हस पडी।

महाराजा उठकर लडखडाते कदमो से रसकपूर के पास पहुचे और

उसे उठाकर पास पडी तिपाई पर बैठा दिया । अगले ही क्षण रसकपूर अपने एक पाव मे स्वय घुघरु बाध रही थी और दूसरे पाव मे महाराजा घुघरु बाध रहे थे ।

रसकपूर पूरी रात नाची । वह तब तक नाचती रही जब तक महाराजा की नजरें थक न गयी । महाराजा की नजरें थक गयी, पर रसकपूर के पैर नही थके ।

"बस ! अब और नृत्य नही !" कहकर महाराजा ने रसकपूर को रोक दिया ।

वह पलग पर आकर बैठ गयी ।

महाराजा ने सुराही मे बची-खुची शराब दो प्यालो मे डाली । एक प्याला रसकपूर के ओठो से लगाते हुए कहा, "बस ! आज की रात का यह आखिरी जाम है ।"

अपना प्याला उठाकर महाराजा ने रसकपूर से पूछा, "रसकपूर !"

"जी, राजन् !"

"यह ससार, यह प्रकृति, यह सृष्टि कितनी सुदर है ?"

"बहुत सुदर है, राजन् !"

"ईश्वर ने हमारे सुख के लिए कितने साधन बनाये हैं !"

"बहुत बनाये हैं, राजन् !"

"पर कभी-कभी मनुष्य इन साधनो को विकृत कर देता है !"

"नादानी से मनुष्य ऐसा करता है ।"

"परन्तु ऐसा क्यो करता है वह, रसकपूर ?"

"विवेकशून्य स्थिति मे या परिस्थितियो के बेकाबू हो जाने पर ही मनुष्य ऐसा करता है ।"

"भगवान ने जिस वस्तु को प्रेम करने के लिए बनाया है, मनुष्य कभी-कभी उससे घृणा करने लगता है ।"

"अक्सर ऐसा होता है ।"

"पर मैं नफरत मे विश्वास नही करता ।"

"यह तो अच्छी बात है, राजन् !"

"प्रेम करने मे कितना सुख मिलता है !"

"बहुत सुख मिलता है।"

"अलौकिक सुख है प्रेम मे, है न !"

"हा !"

"क्या प्रेम स्थायी होता है ?"

'हा, राजन् ! प्रेम स्थायी होता है।"

"हम दोनो भी तो एक-दूसरे को प्यार करते हैं ?"

"करते हैं, राजन् !"

"क्या हमारा प्रेम भी स्थायी है ?"

'... '

रसकपूर ने इसका कोई उत्तर नही दिया। वह मौन रही।

महाराजा ने पुन पूछा, "हमारा प्रेम स्थायी है न, रस ?"

"स्थायी ?· " रसकपूर बुदबुदाकर बोली, "प्रेम तो अमर होता है, राजन् !"

"स्थायी भी होता है ।" महाराजा ने खुद ही अपने प्रश्न का उत्तर दिया, "तुम जीवन-पर्यन्त प्रेम निभाओगी न ?"

रसकपूर मौन थी।

"निभाओगी न, रस ?" महाराजा ने रसकपूर को झकझोर कर पूछा, "नही निभाओगी क्या ?"

"मैं · मैं तो जन्मजन्मातर के लिए आपकी हू, राजन् !"

महाराजा को राहत मिली। उन्होंने एक ही घूट मे प्याले की बाकी मदिरा को कण्ठ से नीचे उतारा और पूछा, "अच्छा, यह बताओ, प्रेम की अतिम परिणति क्या होती है ?"

"यह कोई नही जानता, राजन् ! '

महाराजा के चेहरे पर कुछ खिचाव-सा आ गया। वे प्रेम की अतिम परिणति के सम्बन्ध मे अपने विचार स्थिर करने लगे।

□

जोधपुर पर विजय की खुशी स्थायी नही रह सकी।

उदयपुर से समाचार आया, अनुपम सुदरी राजकुमारी कृष्णाकुमारी ने विष खाकर आत्महत्या कर ली है। कृष्णाकुमारी ने अपने उस सौन्दर्य को अभिशाप समझा, जिसकी वजह से इतनी खून-खरावी हो गयी थी।

महाराजा इस समाचार से वहुत दु खी हुए। वे यह सोचकर दु:खी थे कि जिसे पाने के लिए इतना वडा युद्ध लडा गया, अपने अनेक साथियो को उन्होंने खोया, वह इतनी जल्दी ही ससार को छोडकर चली गयी।

महाराजा इस सदमे को वर्दाश्त नही कर सके। उन्हे ज्वर रहने लगा। कुछ ही दिनो मे वे गभीर रूप से अस्वस्थ हो गये।

राजवैद्य ने महाराजा का उपचार शुरू किया। कई तरह की औपधिया महाराजा को दी गयी, पर बेअसर सिद्ध हुई। महाराजा का ज्वर उतर ही नही रहा था। वे पलग पर लेटे-लेटे बुदबुदाते रहते—'किसके लिए इतना वडा युद्ध लडा मैंने ? किसके लिए मैंने इतने योद्धाओ का खून वहाया ? आह कृष्णा ! तुम कहा चली गयी ? '

महाराजा के चित्त को शान्ति देने के उद्देश्य मे रसकपूर सुवह-शाम सितार लेकर भजन गाती रहती।

महाराजा की वीमारी के लम्बी खिच जाने से व्यवस्थित राजकाज अव पुन अव्यवस्थित हो गया। उनकी लम्बी वीमारी का फायदा उठाकर कुछ सामन्तो ने मनमानी करनी शुरू कर दी। दूनी के सामन्त चादसिंह ने भी रसकपूर के खिलाफ पुन जिहाद छेड दिया। प्रधानमत्री सारी स्थिति पर नियत्रण पाने मे स्वय को असमर्थ पा रहे थे।

राजस्व मे तेजी से गिरावट आने लगी। राजकोष पर भारी दवाव पडने लगा।

उधर मराठो ने भी करवट वदल ली थी। जयपुर के साथ की गयी सधि को उन्होने तोड दिया था। अमीरखा पिंडारी ने भी आखें तरेरनी शुरू कर दी। इस प्रकार आतरिक दशा विगडने के साथ-साथ वाह्य खतरा भी

उत्पन्न हो गया था।

प्रधानमत्री ने सारी स्थिति पर विचार किये जाने हेतु महाराजा जगतसिंह से दरबार का आयोजन करने का अनुरोध किया। अस्वस्थता के बावजूद महाराजा ने इस बात को मान लिया और मुकुटमहल के अदर ही सभागार मे दरबार लगाया गया। रियासत के सभी प्रमुख सामन्तो को इसमे भाग लेने के लिए आमत्रित किया गया था।

सभा मे प्रधानमत्री ने सारी स्थिति पर विस्तार से प्रकाश डाला। उन्होने उपस्थित सरदारो को बताया कि हालांकि जोधपुर पर ऐतिहासिक विजयी पायी गयी है परन्तु यह विजय हमे बहुत महगी पडी है। इस युद्ध मे जहा अनेक योद्धाओ को खोना पडा है, वहा काफी बडी धनराशि से भी हाथ धोना पडा है। छह महीनो की इस लम्बी लडाई मे काफी धन व्यय हुआ है। इधर प्राकृतिक प्रकोप भी हुआ है। अच्छी फसल न होने से राजस्व मे भारी गिरावट आयी है। परिणामस्वरूप राजकोष पर इस समय भारी दबाव पड रहा है। इन आतरिक हालातो के अलावा बाहरी हालात भी अच्छे नजर नही आ रहे हैं। मराठो ने सधि तोड दी है और अमीरखा पिंडारी भी अब विश्वसनीय नही रहा है। मैं समस्त प्रमुखो से अनुरोध करता हू कि इन सारी परिस्थितियो पर, महाराजा के गभीर रूप से अस्वस्थ होने की अवस्था मे, गभीरतापूर्वक विचार करें।

प्रधानमत्री के वक्तव्य के बाद सभी सामन्त विचार-विमर्श मे लीन हो गये।

सामन्त आपस मे मत्रणा करने मे लगे ही हुए थे कि डिग्गी के ठाकुर मेघसिंह ने खडे होकर सबका ध्यान आकर्षित किया।

महाराजा, रसकपूर और प्रधानमत्री मेघसिंह की ओर उन्मुख हुए।

मेघसिंह ने सभा को सम्बोधित करते हुए अपने सुझाव रखे, "अन्न-दाता! जो स्थिति बयान की गई है, वह वस्तुत चितनीय है। हमे समस्या से निपटने के लिए दुहरी नीति अपनानी चाहिए। एक तो कुछ तात्कालिक कदम उठाये जाने चाहिए, जिनका मैं अभी विस्तार से वर्णन करता हू।

दूसरा हमे उस जमीदोज खजाने को ढूंढ निकालना चाहिए जिसे हमारे पूर्वजो ने ऐसे ही आडे वक्त मे काम आने के लिए गाडा था।"

सभी सामन्त उत्सुकता के साथ डिग्गी के ठाकुर की बात सुन रहे थे।

"राजराजेश्वर! चूंकि खजाना ढूंढने मे समय लग सकता है, अत. हमे कुछ तात्कालिक कदम उठाने चाहिए। राजकोप के लिए प्रत्येक मामान्त से कुछ अशदान लिया जाना चाहिए तथा सेना को पुन शक्तिशाली बनाने के लिये हर सामन्त को अपने यहा प्रति एक हजार की आबादी पर पचास सैनिक तथा दस घुडसवार तैयार कर उनका खर्च वहन करना चाहिए।

महाराजा, रसकपूर और प्रधानमत्री को यह सुझाव मान्य था। परन्तु अन्य सामान्त मेघसिंह के इस सुझाव पर आपस मे मत्रणा करने लगे।

एक सामन्त ने खडे होकर पुन सभा का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। उसने कहा, "अन्नदाता! यदि आप क्षमा करें तो मैं एक सुझाव रखू! हमे पता चला है कि कलकत्ते मे गोरो ने 'ईस्ट इडिया कम्पनी' की स्थापना की है। इस कम्पनी के पास कुशल रणनीतिज्ञ तो हैं ही, साथ ही साथ आधुनिक शस्त्र-अस्त्र भी हैं। हमे इस कम्पनी से सधि कर लेनी चाहिए। इससे मराठो के दबाव को रोका जा सकता है।"

इसके पूर्व कि महाराजा इस सुझाव पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते, रसकपूर बोल पडी, "कदापि नही! क्या हमारा शौर्य समाप्त हो चुका है? क्या राजपूती खून ठण्डा पड चुका है जो हमे अब मलेच्छ-रक्त की शरण लेनी होगी?"

सभा मे मौन छा गया।

अत मे डिग्गी के ठाकुर द्वारा दिये गये सुझावो पर अमल करने का निर्णय लेकर सभा विसर्जित हो गयी।

सभागार से दूनी का सामन्त चादसिंह झिलाय के ठाकुर के साथ महाराजा से मिलने उनके निजी कक्ष मे गया। उस समय महाराजा

रसकपूर के साथ सभा मे हुए फैसलो पर वार्ता कर रहे थे।

दोनो सामन्तो के आने की सूचना चोवदार ने महाराजा को दी। महाराजा को सभा की समाप्ति के तत्काल वाद चार्दसिह का आना कुछ आश्चर्यजनक लगा। उन्होने चोबदार से उन्हे अन्दर भेजने को कहा।

सामन्त चादसिह ने आकर महाराजा को अभिवादन किया, फिर एक तीखी नजर रसकपूर पर फेंक कर महाराजा से वोला, "यदि अन्नदाता एकात वख्शें तो मैं कुछ अर्ज करू।"

महाराजा जगतसिह को यह वुरा तो लगा, परन्तु फिर उन्होने चले जाने के अभिप्राय से रसकपूर की ओर देखा। रसकपूर चुपचाप उठकर पिछले कक्ष मे चली गयी।

"अन्नदाता! अपराध क्षमा हो। आज सभा मे राज्य की स्थिति का जो चित्र खीचा गया और जो सुझाव दिये गये, सव समयोचित हैं। हम इन सुझावो पर अमल करेंगे। खजाने को ढूढने के लिए हम विशेष रूप मे प्रयत्न करेंगे। बाहरी सभावित आक्रमणो के मुकाबले के लिए हम अपनी सेना का पुनर्गठन करेंगे। हम चाहेगे कि यह कठिन कार्य आप हम पर ही छोड दें।"

"यानी कि ?"

"मतलब यह कि आप प्रधान सेनापति को आदेश दे दें कि वह मेरे कहे अनुसार सेना को सगठित करें। यदि सेनापति मेरे आदेशानुसार कार्य करते हैं तो हम अल्पावधि मे ही सेना को सुसज्जित कर लेंगे।'

महाराजा को सामन्त चार्दसिह का यह सुझाव वुरा नही लगा। उन्होने इसे तत्काल मान लिया।

"और जमींदोज खजाने को ढूढने का काम किसको सौपा जाय?"

'यह भी अन्नदाता आप मुझ ही पर छोड दीजिये! मैं चार ऐसे विश्वसनीय सरदारो को इस कार्य के लिए नियुक्त करूगा जिनके पूर्वजो का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे खजाना जमीदोज किये जाते समय सम्बन्ध रहा है।"

महाराजा को यह सुझाव भी बहुत उपयुक्त लगा। उन्होंने सेना के पुनर्गठन और खजाने की खोज, दोनो कार्यों का दायित्व सामन्त चार्दसिंह को सौंप दिया।

सामन्त चार्दसिंह ने बीजक की खोज पुनः पोथीखाना मे शुरू करायी। स्वर्गीय महाराजा सवाई जयसिंह के निजी कक्ष के कुछ गुप्तस्थलो को भी टटोला गया।

बीजक की खोज के साथ-साथ सवाई जयसिंह के समय जमीदोज किये गये खजाने से सम्बन्धित सामन्तो के घरो मे भी किसी सूत्र या सकेत पा जाने की दृष्टि से खोज की गयी।

खजाने के ढूढ निकालने मे अथक परिश्रम के बावजूद चार्दसिंह को कोई उल्लेखनीय सफलता नही मिली।

खजाना न मिलने से चार्दसिंह और महाराजा जगतसिंह दोनो को ही भारी निराशा हुई। जमीदोज खजाने से जयपुर राज्य को शक्तिशाली बनाकर रसकपूर के साथ सुख-चैन से दिन बिताने के महाराजा जगतसिंह के मसूबे ध्वस्त हो गये। अठ्ठाईस वर्षीय महत्त्वाकाक्षी महाराजा जगतसिंह ने चार्दसिंह के असफल हो जाने के बावजूद प्रधानमत्री को जमीदोज खजाने को निरन्तर ढूढते रहने का आदेश दिया।

खजाना ढूढे जाने मे महाराजा, प्रधानमत्री और प्रमुख सामन्त इतने व्यस्त हो गये थे कि राजकाज के सचालन की किसी को सुध-बुध ही नही रही। इसका फायदा उठाकर कुछ मुखिया मनमानी करने लगे और अधिकारी स्वच्छद होकर आचरण करने लगे। सूखा पड़ जाने से जनता वैसे ही तकलीफ मे थी, तिस पर अधिकारियो के अत्याचार, लोगो की अनेक शिकायतें जमा होने लगी।

राज्य को आर्थिक रूप मे सुदृढ करने की आखिरी किरण जमीदोज खजाने के न मिल पाने मे चार्दसिंह पुन उखड़ गया और उसने रसकपूर के खिलाफ दुबारा जिहाद छेड दिया। वह रसकपूर को निहायत अपशकुनी नारी बताकर जनता मे उसके विरुद्ध घृणा फैलाने लगा।

चादसिंह और उसके समर्थको ने महाराजा को कहला भेजा कि जब तक रसकपूर राजमहल मे रहेगी, वे महाराजा से कोई सहयोग नही करेंगे।

इस चेतावनी से महाराजा जगतसिंह बहुत क्षुब्ध हो उठे। विपद्-काल मे असहयोग की बात उन्हें काफी कष्टदायक लगी। उधर गुप्तचरो की सूचना थी कि मराठे जयपुर पर आक्रमण करने की जोरदार तैयारिया कर रहे हैं। इस दुष्काल मे चादसिंह की जिद महाराजा को सहन नही हुई। उन्होंने रसकपूर के मामले को अन्तिमरूप मे निपटा देने की एक योजना बनायी और इसके लिये राजसभा आमन्त्रित की।

प्रधानमत्री ने अपने विशिष्ट अनुयायियो द्वारा पूरे शहर मे जोरदार चर्चा फैला दी कि महाराजा सभा मे एक विशेष घोषणा करने वाले हैं। सारे शहर मे और सामन्तवर्ग मे इस घोषणा के प्रति भारी उत्सुकता जाग्रत हो गयी।

निश्चित दिवस पर सभा का आयोजन हुआ।

सभागार मे सामत, सरदार, जागीरदार प्रधानमत्री, मुखिया, अधिकारी तथा शहर के प्रमुख आमन्त्रित विशिष्टजन समय से पूर्व ही आ पहुचे थे। आज की सभा मे गुप्तचरो के मुखिया और सेना के प्रधान को भी आमन्त्रित किया गया था। ये दोनो एकात मे अपने स्थान पर बैठे गभीर मत्रणा कर रहे थे, जबकि अन्य लोग सभावित घोषणा का अनुमान लगा रहे थे।

चोबदार की आवाज गूजी और सभा मे उपस्थित जन शात हो गये।

"बाअदब, बमुलाहिजा होशियार! राजराजेन्द्र महाराजाधिराज सवाई जगतसिंहजी बहादुर पधार रहे हैं "

सभा मे महाराजा रसकपूर के साथ पधारे।

महाराजा के स्थान ग्रहण कर लेने के बाद सामन्त बैठने लगे। कुछ सामन्त तो तब तक न बैठे, जब तक महाराजा के बाद रसकपूर ने भी अपना स्थान ग्रहण नही कर लिया। महाराजा ने ऐसे सामन्तो को

मुस्कराकर प्रोत्साहित किया। चादसिंह की तीखी नजरें उन सामन्तो की ओर मुडी।

परम्परानुसार सभा मे पहले राजकाज निपटाया गया। फिर कुछ फरियादी मामले उठाये गये।

अन्त मे महाराजा ने सभा को उद्बोधन किया, "सभासदो! कुछ दिनो से मेरे पास शिकायतें आ रही हैं कि राज्य के कुछ अधिकारी स्वच्छद आचरण कर रहे हैं। मनमानी हो रही है। प्राकृतिक प्रकोप से दुखी जनता को इससे काफी कष्ट हो रहा है। उधर, बाहरी खतरा भी वढ गया है। मराठो और अमीरखाँ ने फिर से उत्पात मचाना शुरू कर दिया है। वडे पैमाने पर किसी वाह्य आक्रमण के हो जाने का खतरा दिखाई दे रहा है। इसलिए अन्दरूनी और वाहरी खतरो से निपटने के लिये आज हममे एकता का होना अत्यन्त आवश्यक है। मैं देख रहा हू, रसकपूर को लेकर सामन्त दो खेमो मे वट गये हैं। यह विभाजन राज्य के लिए हानिकारक सिद्ध हो रहा है। मैं भी इस विग्रह से अब वहुत तग आ चुका हू। अत मैं आज रसकपूर के मामले को अन्तिम रूप से निपटा देना चाहता हू।"

सामन्तो की उत्सुकता चरम सीमा पर पहुच गयी। दूनी के सामन्त चादसिंह ने अपनी मूछो पर हाथ फेरा और मन्द-मन्द मुस्कराने लगा। चादसिंह के समर्थक सामन्त, चादसिंह को मुस्कराता हुआ देखकर सभावित विजय से प्रसन्न होकर आपस मे एक-दूसरे से आखो ही आखो मे वतियाने लगे।

महाराजा वोलते गये, "रसकपूर इस राजमहल मे रह रही है। उसे रहते हुए भी काफी समय हो गया है। इस प्रकार से वह राजमहल की व्यवस्था का अग ही वन चुकी है। राजकाज मे भी उसकी वातें अनेक वार अत्यन्त उपयोगी समझी गयी हैं। युद्धकाल मे तो मेरी अनुपस्थिति मे रसकपूर ने ही जयपुर को सुरक्षित रखा था। उसने अनेक वार अपने विलक्षण विवेक का परिचय दिया है। और अब रसकपूर मेरे इतना

निकट आ चुकी है कि उसके विना मैं स्वय अस्तित्वहीन हो जाता हू। अत राजमहल मे वह साधिकार रहने की अधिकारिणी हो चुकी है। पर चूंकि वह राजवश से सम्बन्धित नही है, इसलिए कुछ सामन्तो को उसके आगे सिर झुकाने मे या अपनी वात कहने मे झिझक होती है। मैंने वहुत सोच-विचारकर इसका हल निकाल लिया है। रसकपूर को राजमहल मे स्थापित करने के लिए जरूरी है कि उसे राजवश से जोडा जाये। अत मैं घोपणा करता हू कि आज से जयपुर के आधे राज्य की मालिक रसकपूर होगी। मैं आधा जयपुर रसकपूर को समर्पित करता हू।"

महाराजा जगतसिह की इस घोषणा से सभा मे सन्नाटा छा गया। अव तक मुस्करा रहे चादसिह और उसके समर्थक सामन्तो के चेहरो पर हवाइया उडने लगी। एक दूसरे को आखो से सकेत कर रहे सामन्त अव एक दूसरे को आखें फाडकर देखने लगे।

प्रधानमत्री ने औपचारिकता निभायी। उन्होने आधा राज्य रसकपूर के नाम किये जाने का लिखित घोपणा-पत्र पढकर सभा मे सुनाया और सव की उपस्थिति मे उस फरमान पर महाराजा से हस्ताक्षर भी करा लिये।

एक निस्तब्धता के साथ सभा विसर्जित हो गयी।

रसकपूर को महाराजा जगतसिह द्वारा आधा राज्य सौंप दिये जाने के वाद रसकपूर वाकायदा 'पटरानी' बनकर राज्य करने लगी। उसके शासन मे अधिकाश उन्ही सामन्तो के ठिकाने थे जो चादसिह के नेतृत्व मे उसका विरोध करते रहे थे। अव तक रसकपूर के अस्तित्व को नकार कर चल रहे इन सामन्तो को मानसिक रूप से लकवा-सा मार गया। अव तो उनकी मालकिन, स्वामिनी, भाग्यनिमात्री रसकपूर ही थी। वह अब किसी की जागीर छीन सकती थी और चाहे जिसे जागीर सौंप सकती थी।

किन्तु रसकपूर ने ऐसा कोई भडकाने वाला काम नही किया। उसने न किसी विरोधी सामन्त की जागीर छीनी और न ही किसी अपात्र व्यक्ति को जागीर दी। बल्कि उसने चादसिह का हृदय जीतने की दृष्टि से उसे

अपने राज्य का प्रमुख बनाना चाहा, पर चादसिह ने अस्वीकार कर दिया।

पासा उल्टा पड गया था। जहा महाराजा जगतसिह रसकपूर को आधे जयपुर की स्वामिनी बनाकर सुस्थापित करना चाहते थे, वहा अब तक रसकपूर को राजमहल मे बर्दाश्त कर रहे वे सामन्त भी उखड गये। उन्होंने भी सामन्त चादसिह के स्वर-मे-स्वर मिला दिया। जनता मे भी इस घोषणा का स्वागत नही हुआ। जयपुर शहर मे जोरो से कानाफूसी शुरू हो गयी। मुखिया और अधिकारीगण तो बाकायदा प्रधानमत्री को पदच्युत करने के प्रयास मे जुट गये। इनका मानना था कि रसकपूर को इस हद तक पहुचाने मे प्रधानमत्री द्वारा महाराजा को दिया गया सहयोग ही था।

मराठो के पास जयपुर की बिगड रही आन्तरिक और आर्थिक दशा की सूचनाए बराबर पहुच रही थी। मराठो ने एक विशाल सेना तैयार की और जयपुर पर आक्रमण करने के लिए कूच कर दिया। राजनीति मे मौके का फायदा न उठाने वाले को मूर्ख ही कहा जाता है।

गुप्तचरो ने कोटा के पास मराठो की भारी सेना के जमाव की सूचना महाराजा को दी। स्थिति ने बहुत भयकर रूप ले लिया था। महाराजा ने तुरन्त युद्ध की तैयारिया शुरू कर दी। उन्होंने सहयोग के लिए दूनी के सामन्त चादसिह को भी बुलाया, परन्तु वह अस्वस्थ होने का बहाना करके महाराजा द्वारा बुलायी गयी आपातकालीन बैठक मे भाग लेने नही आया। चादसिह के नाम जयपुर की सुरक्षा का आदेश छोडकर महाराजा जगतसिह सेना लेकर स्वय निकल पडे।

महाराजा जगतसिह मराठो की सेना की शक्ति एव युद्धकौशल से परिचित थे, इसलिए अपनी सहायतार्थ उन्होंने मेवाड की सेना भी बुला ली।

कोटा के पास जयपुर-मेवाड-कोटा-बूदी की सम्मिलित सेना और मराठो की सेना मे घमासान युद्ध छिड गया। महाराजा जगतसिह के अद्भुत शौर्य प्रदर्शन के बावजूद चार राज्यो की सयुक्त सेना भी मराठो

के युद्ध चातुर्य से हार गयी।

महाराजा जगतसिह ने मराठो को युद्ध का मनचाहा खर्च और भारी जुर्माना देना स्वीकार किया और अपनी पराजय मान ली।

जयपुर मे पराजय की खबर पहुचते ही मातम छा गया।

चादसिह की अध्यक्षता मे शीर्ष सामन्तो की एक गुप्त बैठक हुई। बैठक में जयपुर की अधोगति का कारण रसकपूर को घोषित किया गया, और इस काटे को सदैव के लिए समाप्त कर देने के लिए चादसिह को कहा गया।

रात के तीसरे पहर चादसिह के नेतृत्व मे कुछ सामन्त सैनिक लेकर मुकुटमहल पहुचे, जहा रसकपूर महाराजा जगतसिह के वियोग मे पलग पर पडी तडप रही थी। उसे अभी तक नीद नही आयी थी। वह हर आहट पर महाराजा के आने की कल्पना करती। बार-बार परिचारिकाओ से महाराजा के लौट आने का सदेश पूछ रही रसकपूर सामन्तो के इस षड्यन्त्र से एकदम बेखबर थी।

सामन्तो ने आकर मुकुटमहल को घेर लिया और दूनी का सामन्त अपने साथियो के साथ महल के अन्दर प्रविष्ट हुआ।

"कौन ?" रसकपूर ने वही से ऊची आवाज मे पूछा।

"मैं हू—चादसिह।"

"आप ?" इतनी रात मे ? आपकी यहा आने की हिम्मत कैसे हुई ?"

"मैं आपको गिरफ्तार करने आया हू।"

"खामोश! अधम!" रसकपूर ने जोर से आवाज लगायी, "अरे, कोई है ? इसे पकडकर ले जाओ और सीखचो मे बद कर दो।"

रसकपूर के आदेश का पालन नही हुआ। द्वार पर खडे प्रहरी अदर नही आये।

"अरे, तुम सुन क्यो नही रहे हो ? मैं कह रही हूँ, चादसिह को गिरफ्तार कर लो।"

'...'

प्रहरियो से कोई उत्तर नही मिला रसकपूर को। वह तिलमिला कर रह गयी।

एक बार पुन उसने चिल्लाकर सुरक्षा-प्रहरियो को पुकारा, पर वे अदर नही आये। रसकपूर चादसिंह का षड्यन्त्र समझ गयी। वह निढाल होकर अपने पलग पर गिर पडी।

एक सामन्त ने मशाल जलाकर कमरे मे रोशनी की। चादसिंह ने रसकपूर की बाह पकडी और उसे मुकुटमहल से बाहर ले आया।

रसकपूर को सम्पूर्ण वैभव के साथ नाहरगढ किले मे, जहा सिर्फ बदी राजाओ को कैद रखा जाता था, कैद कर दिया गया।

रसकपूर को गिरफ्तार कर लेने के बाद सामन्तो ने राजमहल पर भी एक प्रकार से कब्जा कर लिया। प्रधानमत्री को एकदम पगु बना दिया और उनके आदेशो की पालना उन्होने रुकवा दी। प्रधानमत्री मजबूर हो चुपचाप अपने निवास पर आराम करने लगे। सामन्तो ने महाराजा द्वारा रसकपूर के नाम किये गये आधे राज्य के फरमान को फाड डाला और उसके नाम का चल रहा सिक्का रुकवा दिया।

पराजित महाराजा जब जयपुर लौटे, तो उन्हे यह मर्मभेदी समाचार मिला। सामन्तो द्वारा की गयी कार्यवाही को जहर के घूट की तरह पी लेने के अलावा उनके पास कोई चारा नही था। वे इस समय एकदम अवश और शक्तिहीन हो चुके थे। युद्ध की पराजय से जहा उन्होने अपनी प्रतिष्ठा खो दी थी, वहा आर्थिक दृष्टि से जर्जर राज्य अब विकट अर्थाभाव के सकटो से जूझ रहा था। युद्ध का खर्चा और जुर्माना भी तो समय पर मराठो को पहुँचाना था। इस सबके लिए सामन्तो का सहयोग आवश्यक था। विवश होकर सारी बातें सुनकर भी महाराजा को चुप रह जाना पडा।

चाहते हुए भी महाराजा ने रसकपूर को नाहरगढ किले की कैद से मुक्त नही कराया। सामन्त चादसिंह ने महाराजा से साफ-साफ कह दिया था कि यदि रसकपूर को वापस राजमहल मे लाया गया तो महाराजा को

इसके लिए गभीर परिणाम भुगतने होगे। महाराजा जगतसिह गभीर परिणाम का मतलब समझते थे, अत रसकपूर के मामले मे उन्होने चुप्पी साध लेना ही उचित समझा।

रमकपूर की मुक्ति के लिए महाराजा द्वारा जोर न दिये जाने से सामन्त उल्टा खुश हुए और वे 'अर्थ' जुटाने मे लग गये, जिससे मराठो को समय पर भुगतान दिया जा सके।

□

रसकपूर के अभाव मे तडप रहे महाराजा ने एक दिन अपने मन की तसल्ली के लिए रसकपूर का हाल पुछवाना चाहा। उन्होने इसके लिए जयराज को बुलवाया। जयराज विश्वसनीय व्यक्ति तो था ही, साथ ही उसके सभी सामन्तो और प्रतिष्ठित व्यक्तियो से सम्बन्ध अच्छे थे। नाहरगढ़ किले मे जाकर रसकपूर से मिलने मे उसके लिए किसी विशेष कठिनाई की सम्भावना नही थी।

महाराजा की बात समझकर जयराज अपनी सितार लेकर नाहरगढ किले मे पहुचा। वह स्वय भी रसकपूर की हालतजानने के बारे मे बहुत उत्सुक था। महाराजा द्वारा यह कार्य सौंपे जाने से वह उल्टा प्रसन्न ही हुआ था।

एक विभाग का मुखिया होने के नाते उसका स्तर मत्रीपद के समकक्ष था। इसलिए प्रारम्भिक द्वारो के प्रहरियो ने जयराज को नही टोका। परन्तु जहा रसकपूर कैद थी, वहा महल के द्वारपाल ने जयराज को अदर प्रवेश करने से रोक दिया।

जयराज द्वारपाल से बहस करने लगा। वह उसे समझाने लगा कि एक ऐसे 'राग' को जिसे स्वय रसकपूर ने ईजाद किया है, उसके लिए सीख लेना बहुत जरूरी है, अन्यथा वह 'राग' भी सदा के लिए रसकपूर के साथ ही चला जायेगा। परन्तु द्वारपाल टस-से-मस नही हुआ।

हल्ला-गुल्ला सुनकर वहा चादसिह आ गया। उसने जयराज की बात सुनकर, उसे रसकपूर के पास जाने की इजाजत दे दी।

जयराज को देखते ही रसकपूर खुशी से उछल पडी। उसने प्रश्नो की झडी लगा दी, "महाराजा अभी लौटे नही क्या। वे कव लौट रहे हैं ? उन्हे शायद दुराचारियो के कृत्य का अभी पता नही चला होगा। जैसे ही वे सुनेंगे, चादसिंह को जरूर सजा देंगे। इन आततायियो को वे पूरा सवक सिखायेंगे। जल्दी वताओ, जयराज। कव लौट रहे हैं महाराजा ?"

जयराज सताप से चेतना खो वैठा। सितार एक ओर रखकर वह चुपचाप वैठ गया।

"अच्छा। यह सितार भी लाये हो ? ठीक ही किया तुमने। मुझे भी नाचे वहुत दिन हो गये है। तुम सितार वजाओ, आज मैं एक नये नृत्य का अभ्यास करूगी। महाराज थके-मादे आयेंगे तो मैं उन्हे यही नया नृत्य दिखाऊगी। नया राग और नये नृत्य मे मैं उनकी तमाम थकावट कुछ क्षणो मे ही दूर कर दूगी। कव आ रहे हैं महाराजा ?"

जयराज चुपचाप गभीर मुद्रा मे वैठा रहा।

रसकपूर ने सितार हाथो मे ले लिया और स्वय ही उसकी उगलिया तारो पर फिरने लगी, 'उनका कोई समाचार तो आया होगा ? तुम कुछ वोलते क्यो नही ?" रसकपूर की उगलिया रुक गयी, सितार के तार भी खामोश हो गये। जयराज की अत्यधिक गभीरता से वह घवरा उठी, "जयराज। तुम इतने गभीर क्यो हो ? तुम कुछ वोल क्यो नही रहे हो ?" वह जयराज को झकझोर कर पूछने लगी, "वोलो जय। वोलो। मैं नही घवराऊगी। महाराजा की क्या खवर है ? वे सकुशल तो हैं न ? कव लौट रहे हैं वे ?"

"वे लौट आये हैं।" वड़ी मुश्किल से जयराज कह पाया।

साश्चर्य रसकपूर ने दुहराया, 'वे लौट आये हैं ?"

"हा।"

"फिर · फिर भी "

"फिर भी वे तुमसे दूर रहने को विवश है।"

"विवश हैं ? ऐसा क्यो ?"

"वे युद्ध मे हारकर लौटे हैं। धन-जन का भी बहुत नुकसान हुआ है। मराठो को युद्ध का खर्चा और भारी जुर्माना अभी चुकाया जाना है। राजकोष मे इतना धन है नही। इसलिए महाराजा को सामन्तो पर आश्रित होना पड रहा है। वे उन्हे नाराज या बागी बनाकर तुमसे नही मिल सकते। पर उनकी आखो मे रात-दिन तुम्हारी ही छवि बनी रहती है। उनके मन मे हर घडी तुम्हारे मिलन की तडप रहती है। उन्होने ही मुझे तुम्हारा कुशल-क्षेम पूछने के लिए यहा भेजा है। यह सितार तो मैं मात्र बहाने के लिये साथ लाया हू।"

रसकपूर की आह निकल गयी। उसकी आखो से अश्रु प्रवाहित होने लगे।

जयराज ने रसकपूर को ढाढस बधाया। उसे आशा दिलायी कि जैसे ही महाराजा परिस्थितियो से उभरेंगे, उसे वापस राजमहल मे बुला लेंगे।

जब रसकपूर कुछ सहज हुई तो बोली, "क्या आर्थिक स्थिति ठीक होते ही महाराजा पुन मुझे राजमहल मे बुलवा लेंगे ?"

"अवश्य बुलवा लेंगे! वे स्वय आकर तुम्हे यहा से ले जाएगे। अभी तो वे एकदम विवश हैं।"

"तो•• तो तुम मेरा एक काम करो! सिर्फ एक काम! मैं मैं जिंदगी भर तुम्हारे इस एहसान के लिए कृतज्ञ रहूँगी!"

"बताओ, मुझे क्या करना है ?"

"तुम किसी प्रकार से मुझे यहा से बाहर निकाल दो। मैं मैं उस खजाने की खोज करूगी जो महाराजा सवाई जयसिंह मे आज ही के लिए जमीदोज किया था। मैं खजाने को ढूंढकर रहूँगी। तब ही तब ही मेरा प्रियतम मुझे वापस मिल सकेगा।"

"यह बडा ही कठिन कार्य है, रसकपूर! तुम यह नही कर पाओगी, तुम्हारा सारा जीवन इसमे खप जायेगा तब भी सफलता बहुत दूर होगी।"

"यहा भी तो जीवन सड रहा है! बाहर जाकर प्रयास करने मे क्या

नुकसान है, जय ! मुझे सिर्फ एक वार आजाद कर दो । मैं तुम्हारे "

"नही नही ! ऐसा मत कहो । अच्छा ! मैं तुम्हे आजाद किये जाने का कोई उपाय सोचता हू ।"

कुछ देर तक सोचने के वाद जयराज ने सितार उठाया ।

'रसकपूर ! आज तुम्हारा इम्तिहान तुम खुद लोगी ! जितना अच्छा गा सकती हो, गाओ ! देर रात तक मैं सितार वजाऊगा और तुम गाओगी। आज ऐसा गाओ कि सव सुनने वाले मस्त होकर झूमने लगें । उसके वाद ही मैं तुम्हे अगला कदम वताऊगा ।'

जयराज ने सितार वजाना शुरू किया । और रसकपूर ने गाना । देर रात तक दोनो कलाकार अपने फन से नाहरगढ किले को गुजाते रहे ।

आधी रात वीत चुकी थी । प्रहरी मधुर गायन सुनते-सुनते सुध-वुध खोकर ऊघने लग गये थे ।

जयराज ने तुरन्त अपने कपडे खोलने शुरू किये । उसने अपने कपडे रसकपूर को पहिना दिये और स्वय रसकपूर के वस्त्र पहिन लिए ।

यही उपयुक्त अवसर था । रसकपूर चुपचाप सितार लेकर जयराज के वेश मे वाहर निकल आयी । अधेरे मे ऊघ रहे प्रहरियो ने, जिन पर अभी तक सगीत का नशा छाया हुआ था, रसकपूर को जयराज समझकर रोका-टोका नही । रसकपूर किले के वाहर आ गयी । वह सीधे जगल की ओर भाग गयी ।

जयराज ने रसकपूर के चले जाने के वाद अपना सिर जोरो मे दीवार मे टकरा-टकराकर अपने को घायल कर लिया, ताकि सुवह उसे देखकर यही समझा जाये कि रसकपूर ने उसे घायल कर वस्त्र वदल लिए और स्वय फरार हो गयी ।

▣

नाहरगढ किले की कैद से फरार हो जाने के तीन वर्षो वाद तक रस-कपूर की कोई खोज-खवर नही मिली । जयराज ने काफी प्रयत्न किये, परन्तु रसकपूर का कही पता नही चला ।

महाराजा जगतसिंह रसकपूर के विछोह से बेहाल हो गये। युवा महाराजा इस आघात को वर्दाश्त नही कर सके। उनका मानसिक एव शारीरिक ह्रास शुरू हो गया। महाराजा की सोलह रानिया और उनके सम्बन्धी भी इसे रोक नही पाये।

महाराजा का स्वास्थ्य निरन्तर गिरता चला गया। राजवैद्य ने कई तरह के उपचार किये, पर महाराजा पर औषधियो का कोई प्रभाव नही पडा।

आज रसकपूर को नाहरगढ किले से गये पूरे तीन वर्ष हो चुके थे। महाराजा की रुक-रुककर चल रही सांसें रह-रहकर रसकपूर को पुकार उठती।

पूरा दिन महाराजा ने बडी बेचैनी से गुजारा। राजवैद्य निराश हो चुका था।

□

अमावस की रात होने के कारण परकोटे के सब द्वार सूर्यास्त होते ही बन्द कर दिये गये थे। रात का पहरा शुरू हो गया था। परकोटे पर बने गुम्बजो और बुर्जों पर खडे प्रहरी आवाज लगाकर सुरक्षा का दायित्व निभा रहे थे।

रात्रि के ठीक दूसरे पहर मे किसी नारी-आकृति ने एक द्वार पर आकर दस्तक दी। उसके हाथ इतने शक्तिशाली नही थे कि वे कोई भारी आवाज पैदा कर सकते। फिर रात मे किसी भी सूरत मे द्वार न खोले जाने का सख्त आदेश भी था। रसकपूर पास के पेड के नीचे बैठ गयी और सुबह का इन्तजार करने लगी।

वैसे तो द्वार सूरज की पहली किरण के साथ ही खोल दिया जाता था परन्तु आज अस्वाभाविक रूप से द्वार काफी विलम्ब से खुला।

द्वार खुलते ही रसकपूर दौडकर अन्दर जौहरी बाजार मे आ गयी और फिर सीधा सब्जीमण्डी जाकर जयराज के निवास पर पहुची।

सब्जीमडी में जयराज के मकान तक पहुचने के बीच कोई भी

रसकपूर को नही पहिचान पाया। तीन वर्षों मे उसने अपनी सारी श्री खो दी थी। खूबसूरत आखें गहरे गढो मे धस गयी थी। रेशम-सरीखे उसके लम्बे वाल रूखी लटो मे वदल गये थे। शारीरिक सुडौलता के नाम पर सूखी खाल से ढकी हड्डिया-भर रह गई थी।

अजमेरी द्वार से जौहरी बाजार तक आते समय रसकपूर को सड़क पर कोई व्यक्ति दिखायी नही दिया। आकाश मे चारो ओर कौए उडकर काव-काव का शोर मचा रहे थे। सारा वातावरण मनहूसियत लिये हुए था।

उसने आकर जयराज के आवास पर जोर-जोर से दस्तक दी।

जयराज वाहर आ गया। पहले तो उसने रसकपूर को पहिचाना ही नही और फिर पहिचानते ही उसकी आखो से आसू वहने लगे।

"तुम मेरी हालत देखकर रो रहे हो न ? अव कोई चिंता नही। मैं भी ठीक हो जाऊगी और महाराजा भी। जयराज ! मैंने खजाने का पता लगा लिया है। अव महाराजा सम्पन्न राजा हो जायेंगे ! मुझे पुन राज-महल मे ले जायेंगे। अव वे 'विवश शासक' नही रहेगे।"

जयराज ने दोनो हाथो से रसकपूर के कधो को पकडा और कुछ क्षण-पर्यन्त उसके कातिहीन चेहरे को देखता रहा। फिर वोला, "रसकपूर ! तुम कुछ क्षण विलम्ब से पहुची हो। महाराजा आज सुवह ही चल वसे। अव वे इस ससार मे नही हैं।"

"क्या " कहकर रसकपूर ने एक चीख मारी और वेहोश होकर वहीं गिर पडी।

जयराज ने द्वार पर पडी वेहोश रसकपूर को उठाना चाहा, पर उसके हाथ वापस लौट आये। वहाँ अव सिर्फ शरीर पडा था, प्राण-पछी उसी समय उड गया था।

"अभागी ! आना ही था तो दो पहर पहले आ जाती ! खजाना ढूढा भी तो तुमने चद लहमो की देर कर दी !"

महाराजा चले गये। रसकपूर चली गयी! रसकपूर के साथ ही खजाने का रहस्य भी चला गया।

मुझे सव याद आ चुका था। रूपसी अव मेरे लिए अजनवी नही थी। मैंने पूर्ण आत्मीयता के साथ रूपसी से कहा, "मुझे सव याद आ गया है, रसकपूर! उस दिन महाराजा के साथ-साथ तुम भी तो ससार छोडकर चली गयी थी। खजाने का रहस्य, जो तुमने अथक प्रयास करके प्राप्त किया था, तुम्हारे जाने के साथ ही गुप्त रह गया था।"

"हा, मैंने महाराजा के लिए अनेक कष्ट सहकर वडी मुश्किल से खजाने का पता लगाया था। परन्तु मेरा दुर्भाग्य! उस विपुल सम्पदा का उपभोग महाराजा नही कर पाये! काश, अगर वे सिर्फ एक दिन के लिए और जीवित रह पाते, तो खजाने को पाकर कितना खुश होते! उनका वह लावण्ययुक्त वीरता दर्शाता मुखमडल पुन दीप्त हो उठता और वे मुस्कराकर प्रधानमत्री और सामन्तो से कहते, "ले जाओ जितना धन चाहिए, और सेना को सगठित करके मराठो को ऐसा सवक सिखाओ, जिससे दुवारा इस ओर देखने का वे साहस भी न कर सके। सचमुच महाराजा खजाना पाकर अत्यन्त प्रफुल्लित हो उठते!"

"मैं समझता हू, खजाना पाकर वे उतना खुश नही होते जितना तुम्हे पाकर खुश होते। जानती हो रसकपूर! उनकी आखें हर पल तुम्हारी छवि देखने के लिए तरसती रही थी। स्वर्गलोक प्रस्थान के पूर्व तक चिर-निद्रा के लिए वन्द हो रही उनकी आखो मे निरन्तर तुम्हारी दर्शनाभिलाषा वनी रही। अन्त मे घोर निराशा और दु ख के साथ ही उन्होने अपनी पलकें वन्द की थी।"

"सुख तो उनके भाग्य मे लिखा ही न था। होश सम्भालते ही उन्हे

सामन्तो के विरोध का सामना करना पड गया था। एक युद्ध से लौटते थे तो दूसरे युद्ध के लिए कूच करने की तैयारी मे जुट जाते थे। एक दिन भी तो उन्होने अपनी इच्छा के अनुसार नही जीया। मैं भी उन्हे वह सुख न दे पायी जिसके लिए वे वर्षों तक तरसते रहे।"

"इसमे तुम्हारा क्या कसूर है, रसकपूर! मनुष्य के जीवन मे 'भाग्य' भी तो कुछ अर्थ रखता है। उनके भाग्य मे सुख भोगना था ही नही।"

"हा, अन्यथा क्या वे मात्र बत्तीस वर्ष की आयु मे ही स्वर्ग सिधार जाते। यह सब भाग्य का खेल ही तो है।"

"वह खेल तो कब का खत्म हो चुका, रसकपूर! फिर, तुम अब तक उनको ढूढती हुई क्यो भटक रही हो? क्यो नही उस खजाने का रहस्य किसी अन्य पर उद्घाटित कर उसे इस धरती पर स्वर्ग-सा आनन्द प्रदान कर देती? अगर चाहो तो मुझ पर ही यह कृपा कर सकती हो और ख़जाने का रहस्य‥ "

आत्मा ने मुझे बीच मे ही टोक दिया, "बिल्कुल नही! यह असभव है! इस ख़जाने का उपभोग सिर्फ महाराज जगतसिह ही कर सकते हैं। तुम तो जानते ही हो कि इसी धन के अभाव के कारण उन्हे अनेक अत्याचार सहन करने पढे थे, और फिर यदि इस खजाने का समय पर उन्हे पता चल जाता तो किसमे इतनी हिम्मत थी जो मुझे उनसे अलग कर सकता! नही जयराज, खजाने का रहस्य तो मैं महाराजा जगतसिह के अलावा किसी को नही बताऊगी। उन्होंने मुझसे वायदा भी तो किया था कि हर जन्म मे वे मुझे मिलते रहेगे। मुझे पूरा यकीन है कि वे अवश्य मिलेंगे। मुझसे मिले बिना वे रह ही नही सकेंगे, जयराज!"

महाराजा जगतसिह के प्रति उसके विश्वास को देखकर मैं दग रह गया।

वह पुन बोली, "मुझ पर तुम्हारे पहले ही बहुत से एहसान हैं, जयराज! क्या एक एहसान और करोगे?" और मेरी स्वीकृति जाने बिना ही कहने लगी, "अनायास ही अगर कही महाराजा जगतसिह से तुम्हारा

सामना हो जाए तो उनसे कहना तुम्हारी 'रस' इन्ही खण्डहरो मे तुम्हारी प्रतीक्षा मे भटक रही है।"

मैं हैरान मुद्रा मे आत्मा के मुह की ओर ताके जा रहा था। मुझे चुप देखकर उसने दुबारा कहा, "बोलो, जयराज ! करोगे न मेरा यह काम ?"

"लेकिन महाराजा जगतसिह के देहावसान को तो कई साल बीत चुके हैं। अब वे कहा और किस रूप मे होंगे, मैं उन्हें कैसे पहचान पाऊगा !" मुझसे कहे बिना न रहा गया।

"नही, जय ! उनकी आत्मा भी मेरी ही तरह भटक रही होगी और जरूर मेरी ही तलाश कर रही होगी। जैसे मैंने तुम्हे खोज निकाला है, इसी तरह हो सकता है वे भी भटकते-भटकते कभी तुम तक पहुच जायें।"

इसकी सभावना पर सोचता हुआ मैं कुछ क्षण विचारो मे खोया खडा रहा।

एकाएक जब तन्द्रा टूटी तो देखा आत्मा जा चुकी थी।

मैंने 'रसकपूर' 'रसकपूर' कई बार जोर-जोर से पुकारा परन्तु खण्डहरो से टकराकर लौटी हुई आवाज के अलावा वहा कुछ न था।

अगले कई दिनो तक मैं लगातार उन खण्डहरो के चक्कर काटता रहा, परन्तु फिर कभी आत्मा से मेरा साक्षात्कार न हुआ। मैंने नाहरगढ किले के कोने-कोने मे तलाश की, जयगढ के आस-पास तथा पूर्व-जन्म के मकान का चप्पा-चप्पा छान मारा, परन्तु रसकपूर की आत्मा फिर कभी प्रकट न हुई।

□□